चीन की कम्युनिस्ट पार्टी की दसवीं कांग्रेस

शिवदास घोष

चीन की कम्युनिस्ट पार्टी की दसवीं कांग्रेस

चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की दसवीं कांग्रेस के सामने प्रस्तुत चाऊ एन लाई की रिपोर्ट में लिन बियाओ के बारे में ऐसे रहस्योद्घाटन हैं जो नौवीं कांग्रेस के बारे में हमारी पार्टी के विश्लेषण को सही साबित करते हैं। दसवीं कांग्रेस ने कुछ अमूल्य शिक्षाएं प्रतिपादित की हैं और हमारी पार्टी अपनी शुरुआत से ही चिंतन की जिस लाइन को लेकर चल रही है उसकी पुष्टि करती हैं।

कॉमरेड्स

आप ने इस मीटिंग में चीन की कम्युनिस्ट पार्टी की दसवीं कांग्रेस में प्रस्तुत रिपोर्ट व संविधान के संबंध में उठाये गये सवालों को सुना है। इन तमाम सवालों को ध्यान में रखते हुए और हमारी केन्द्रीय कमेटी में इस पर हुए विचार-विमर्श के आधार पर ही मैं चर्चा करूंगा तथा यह ध्यान रखने की कोशिश करूंगा कि कोई भी महत्वपूर्ण विषय छूट न जाये।

आप सभी जानते हैं कि सीपीसी (कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ चाइना) की नौवीं कांग्रेस की रिपोर्ट पर चर्चा करते समय नौवीं कांग्रेस द्वारा पारित लिन बियाओ रिपोर्ट के कुछ पहलुओं तथा संविधान की दो धाराओं की हमने कड़ी आलोचना की थी। मैं समझता हूं कि जिस समय हम दसवीं कांग्रेस में चाऊ एन-लाई द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट पर चर्चा करें, उस समय हमें सबसे पहले नौवीं कांग्रेस को ध्यान में रखना चाहिए क्योंकि आप सभी ने ख्याल किया है कि इस दसवीं कांग्रेस में नौवीं कांग्रेस की मूल राजनीतिक लाइन और विश्लेषण का ही अनुमोदन किया गया है और दरअसल उसी को दोहराया गया है। इसलिए हमें एक क्षण के लिए भी यह बात नहीं भूलनी चाहिए कि दसवीं कांग्रेस ने भी नौवीं कांग्रेस की मूल राजनीतिक लाइन जैसी ही लाइन को ग्रहण किया है।

दसवीं कांग्रेस क्यों की गयी

प्रारंभ में ही, एक सवाल उठता है : आखिर यह दसवीं कांग्रेस

क्यों आयोजित की गयी? जांच-परख करने पर हमें यह उत्तर मिलता है : दसवीं कांग्रेस ने एक तरफ दर्शाया है कि उन्होंने वैचारिक व सांगठनिक क्षेत्रों में लिन-बियाओ के नेतृत्व और प्रभाव के कारण लिन-बियाओ के राजनीतिक कार्यकलापों द्वारा प्रस्तुत भटकाव के खतरे से पार्टी की मूल राजनीतिक लाइन की किस तरह रक्षा की है और दूसरी तरफ दर्शाया है कि समाज के अंदर उस खतरे के जो अवशेष रह गये हैं, उनसे लड़ने और नौवीं कांग्रेस की मूल राजनीतिक लाइन लागू करने के लिए वे कौन से उसूलों (principles) को अपनायेंगे। दसवीं कांग्रेस के सामने यही मुद्दे थे। दूसरे शब्दों में, दसवीं कांग्रेस जहां नौवीं कांग्रेस की राजनीतिक लाइन व पार्टी को लिन-बियाओ के प्रभाव या विरासत (legacy) से प्राप्त परिणामों से मुक्त करने और उसी समय इस अवसर का लाभ उठाते हुए नौवीं कांग्रेस की राजनीतिक लाइन व संविधान में इन त्रुटियों को दूर करने के लिए उस रिपोर्ट में जो गलतियां, असंगतियां, अनियमितताएं, घिसे-पिटे मामूली विचार और ऐसी बहुत-सी फिजूल बातें शामिल कर दी गयी थीं, उन्हें रद्द करने पर लक्षित थी। इसका दूसरा उद्देश्य संघर्ष की उसी प्रक्रिया, संघर्ष के उसी हथियार जिससे लिन बियाओ गुट को उस स्तर पर पराजित किया गया, से शिक्षाएं ग्रहण करना था—हालांकि हमें पक्का यकीन नहीं है कि लिन बियाओ गुट को पूरी तरह परास्त कर दिया गया है और समूची पार्टी को उनकी विरासत से मुक्त कर दिया गया है या नहीं—और समूचे तौर पर पार्टी व लोगों को कुछ निश्चित उसूलों के आधार पर संघर्ष के लिए तैयार करना था ताकि भविष्य में अगर पूंजीपति वर्ग व सर्वहारा वर्ग के बीच द्वन्द्व को केन्द्रित करके दो वर्ग लाइन-संघर्ष पैदा हो तो मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ त्से-तुंग चिंतन के आधार पर पार्टी में संघर्ष को सही रास्ते पर संचालित किया जा सके और सर्वहारा अधिनायकत्व को सुदृढ़ बनाकर समाजवाद की विजय के पथ पर एक के बाद दूसरे अडिग कदम उठाये जा सकें।

अब दसवीं कांग्रेस की रिपोर्ट के कुछ उल्लेखनीय पहलू हैं, जिन्हें हमें अवश्य नोट करना चाहिए। चर्चा के दौरान मैं इनका

उल्लेख करूंगा और उन पर अपने विचार पेश करूंगा। मगर उससे पहले मैं आपका ध्यान कुछ महत्वपूर्ण बातों पर आकर्षित करना चाहता हूं, जिनकी सही रूप में गहरी समझ हासिल करके ही हम देश में और देश से बाहर अन्य देशों में अपनी भूमिका निभाने में सक्षम होंगे और विश्व साम्यवादी आन्दोलन को वैचारिक रूप से प्रभावित करने में चाहे जितनी भी सीमित गुंजाइश हो, उसका लाभ उठाने में समर्थ होंगे। लेकिन यह तो इस बात पर निर्भर करेगा कि हम इन तमाम घटनाओं से जरूरी शिक्षाएं ग्रहण करने और गलतियों को समुचित रूप में समझने में समर्थ हुए हैं या नहीं। अत: हमें अपने आप को और दूसरों को कम या ज्यादा करके नहीं आंकना चाहिए अथवा न ही फिजूल तारीफ करनी चाहिए। हमें आवेग से मुक्त होकर जांच-परख करनी चाहिए कि दसवीं कांग्रेस के किन विश्लेषणों ने वैचारिक क्षेत्र में हमारी पार्टी के योगदानों की पुष्टि की है। एकमात्र तभी यह चर्चा उद्देश्यपूर्ण होगी।

नौवीं कांग्रेस पर हमने अपना विश्लेषण प्रकाशित क्यों नहीं किया

हमारे कॉमरेडों ने निश्चित रूप से नोट किया होगा कि अपने पास अपर्याप्त आधार सामग्री एवं आंकड़ों के बावजूद कुछ लक्षणों का अध्ययन करते हुए और सम्भाव्यता के तर्क-विज्ञान को अपना आधार बनाकर नौवीं कांग्रेस की रिपोर्ट पर चर्चा करते वक्त, लिन बियाओ के बारे में हमने जो भी आशंकाएं व्यक्त की थीं, वे अब सभी अक्षरश: सही साबित हुई हैं। यद्यपि नौवीं कांग्रेस पर हमारे विश्लेषण को प्रकाशित नहीं किया गया था फिर भी जनरल बॉडी मीटिंग में उस अवसर पर आप में से जो कॉमरेड उपस्थित थे, उन्हें पार्टी का विश्लेषण निश्चित रूप से याद होगा। उस समय मैंने व्याख्या की थी कि हम किस वजह से अपने विश्लेषण को प्रकाशित नहीं कर सकते हैं और अब दोबारा पुन: इसे दोहरा रहा हूं। आपको निश्चित रूप से याद होगा कि मैंने केन्द्रीय कमेटी से अपने विश्लेषण को प्रकाशित न करने का अनुरोध किया था। इसका कारण यह था कि यद्यपि केन्द्रीय कमेटी ने संभाव्यता के

तर्क-विज्ञान पर आधारित मेरे विश्लेषण को स्वीकार कर लिया था, मगर इसे सिद्ध करने के लिए न तो हमारे पास तथ्यपरक आंकड़े थे और न ही हमें तमाम घटनाओं एवं घटनाक्रमों की जानकारी थी। जो कुछ भी मैं बाहर से अध्ययन करके समझ सका, उस रिपोर्ट ने मेरे मन में कुछ सवाल पैदा कर दिये थे और मैंने संभाव्यता के तर्क-विज्ञान के आधार पर विश्लेषण किया तथा अपनी राय प्रकट की। हमने सीपीसी (चीन की कम्युनिस्ट पार्टी) की दोष-कमियों के बारे में जो कुछ भी महसूस किया था—चूंकि अपने उस अध्ययन एवं व्याख्या की पुष्टि के लिए हमारे पास कोई सामग्री नहीं थी, इसलिए सिर्फ अपने अध्ययन एवं समझ के आधार पर किसी निष्कर्ष पर पहुंचना गैर-जिम्मेदाराना कृत्य समझा, विशेषकर इस कारण से कि यह सीपीसी और माओ त्से-तुंग की प्रतिष्ठा व ऑथोरिटी को कलंकित करने एवं वस्तुगत रूप से गौण करने में मदद करेगा, जो कुछ गलतियों एवं दोष-कमियों के बावजूद, मुख्य रूप से, अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन में क्रांति के महान झण्डे को बुलन्द किए हुए हैं। यह इसीलिए हम नहीं करना चाहते थे, क्योंकि हमें यह पता है कि यदि हम उस समय अपना विश्लेषण प्रकाशित कर देते, तो यह उन पार्टियों व शक्तियों के हाथ वस्तुगत रूप में मजबूत कर देता जो सीपीसी की क्रांतिकारी लाइन का सक्रियता से विरोध कर रही थीं।

कुछ कॉमरेडों ने उस वक्त नौवीं कांग्रेस व लिन बियाओ पर हमारे विश्लेषणों को प्रकाशित करने के पक्ष में इस तरह का तर्क दिया था कि इतिहास अगर बाद में इस विश्लेषण के सही होने की पुष्टि करेगा, तो उसका विस्मयकारी व चौंका देने वाला असर होगा। मैंने मजाक में जवाब दिया था : ''हां हम ऐसा कर सकते हैं, यदि हमारा उद्देश्य जाहिर करना तथा अपने पांडित्य का प्रदर्शन करना हो कि हम कितने विद्वान हैं।'' लेकिन हमारा उद्देश्य वह तो हरगिज नहीं हो सकता। इसका एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू यह भी है कि हम ऐसा कोई कार्य कतई नहीं कर सकते जो पहले ही दिखाई गयी कुछ कमियों, सीमाबद्धताओं अथवा यांत्रिक दृष्टिकोण की खामियों के बावजूद, सीपीसी की प्रतिष्ठा को बट्टा लगाता हो

तथा माओ त्से-तुंग की ऑथोरिटी को कमजोर करता हो, जिनकी क्रांतिकारी आन्दोलन में जबरदस्त देन और कारगरता रही है।

व्यक्तिगत चर्चाओं के दौरान, कुछ कॉमरेडों ने यह भी शंका प्रकट की थी कि यदि हम इसे बाद में प्रकाशित करते हैं, तो ऐसे काफी लोग होंगे जो हमारा विश्वास नहीं करेंगे और कहेंगे कि हम पूरी बात को मनगढ़न्त ढंग से पेश कर रहे हैं और इस तरह हमारी भूमिका को महत्वहीन बना देंगे। मैंने उन कॉमरेडों को सिर्फ यह बताया : ''हम इस आधार पर तो निर्णय नहीं ले सकते कि ऐसे लोग हमारे बारे में क्या सोचते हैं, जो हमारी पार्टी की गौरवशाली भूमिका के प्रति दुर्भावना रखते हैं, बल्कि ईर्ष्या भी करते हैं; अधिक जरूरी यह है कि हम कोई अनैतिक कार्य न करें।'' आप सभी जानते हैं कि हमारी केन्द्रीय कमेटी ने इस विचार का अनुमोदन किया था और इसीलिए नौवीं कांग्रेस पर हमारा विश्लेषण प्रकाशित नहीं किया गया था।

लेकिन अब सीपीसी खुद लिन बियाओ गुट के क्रियाकलापों की खुलेआम आलोचना कर रही है और नौवीं कांग्रेस में की गयी गलतियों में से कुछ को दसवीं कांग्रेस के मंच से और बाद में भी भूल सुधारने की ओर इस प्रकार स्वस्थ चर्चा में सहायक वातावरण सृष्टि करने की कोशिश कर रही है। अत: मैं अब अपनी पुरानी टिप्पणियों और विश्लेषणों को प्रकाशित न करने का कोई कारण नहीं देख पाता हूं। वास्तव में केन्द्रीय कमेटी ने दसवीं कांग्रेस पर विश्लेषण के साथ ही नौवीं कांग्रेस पर हमारा विश्लेषण प्रकाशित करने का निर्णय ले लिया है।

दसवीं कांग्रेस ने हमारे पहले विश्लेषण की पुष्टि की

शुरू में ही मैंने कहा कि हमारे कॉमरेडों को सीपीसी द्वारा प्रस्तुत कुछ विचार–विश्लेषणों को गंभीरता से नोट करना चाहिए। इसका कारण यह है क्योंकि हम अपनी पार्टी के स्थापना-काल से ही, साम्यवादी आन्दोलन के अंदर वैचारिक संघर्ष के क्षेत्र में कुछ सवालों को जोर देकर प्रकाश में लाने की कोशिश करते आ रहे हैं, जिसके समर्थन में अब तक विश्व साम्यवादी आन्दोलन में

किसी ऑथोरिटी को कुछ भी कहते नहीं देखा। सीपीसी की दसवीं कांग्रेस में ही यह पहली दफा घटित हुआ है। थोड़े से अध्ययन से यह पता चलेगा कि दसवीं कांग्रेस रिपोर्ट में बहुत से विचार व विश्लेषण हमारी पार्टी के बहुत अरसा पहले के विश्लेषणों की पुष्टि करते हैं। यदि हम इन्हें भली-भांति समझ सकें तो वह न सिर्फ हमारी पार्टी को सुदृढ़ करने में मदद करेगा और हमारी गतिविधियों को तेज करेगा, बल्कि साथ-साथ इस ऐतिहासिक सत्य को भी सिद्ध करेगा कि नेतृत्व के चरित्र, चिंतन की प्रक्रिया व संगठन की पद्धति द्वारा जांच-पड़ताल करने पर सिर्फ हमारी पार्टी ही भारत में असली कम्युनिस्ट पार्टी है तथा यह कि अपनी सीमित शक्ति के बावजूद, हम विश्व साम्यवादी आन्दोलन में कुछ योगदान करने में समर्थ हुए हैं।

फिर भी हम इस काम में सिर्फ तभी सफल होंगे जब हम पार्टी की लाइन को सही रूप में समझ सकें और इसे अपने उद्देश्य की संगति में हमेशा लागू कर सकें।

हमने नोट किया था कि नौवीं कांग्रेस रिपोर्ट की मूल राजनीतिक लाइन में दो सर्वाधिक महत्वपूर्ण पहलू थे। पहला है, वर्तमान विश्व में मूल द्वन्द्व की पहचान करना और उसके अनुसार चीन की विदेश नीति की मुख्य लाक्षणिकताओं को निर्धारित करना। दूसरा है, जब से चीन की जनता की जनवादी क्रांति (people's democratic revolution) समाजवाद की स्थापना के लिए समाजवादी क्रांति के स्तर में दाखिल हुई, उस समूची संक्रमणकालीन अवधि के दौरान सर्वहारा के अधिनायकत्व को सुदृढ़ करने में पार्टी के मूल राजनीतिक दृष्टिकोण को निर्धारित करना।

इसके अलावा, नौवीं कांग्रेस में, उन्होंने न सिर्फ रिपोर्ट में, बल्कि संविधान में कुछ नयी धारायें जोड़ी थीं। मैं नहीं जानता कि कोई चीज राजनीतिक रिपोर्ट में कहने तथा उसे संविधान में शामिल करने के बीच फर्क के बारे में आप में से कितने कॉमरेड अवगत हैं। जब कोई चीज राजनीतिक रिपोर्ट में कही जाती है तो नि:संदेह वह महत्वपूर्ण हो जाती है; लेकिन ज्योंही उसे संविधान में शामिल कर लिया जाता है तो उसका महत्व कई गुना बढ़ जाता है–वह

एक तरह से कुछ खास अवधि तक अपरिवर्तनीय, पार्टी पर कुछ-कुछ बाध्यकारी हो जाती है। वह अब आगे ऐसी चीज नहीं रह जाती जिसकी आज तो एक तरह की और अगले रोज दूसरे तरह की अवधारणा बना सकें। राजनीतिक कार्यकर्ताओं को इसके बारे में बहुत ज्यादा सचेत होना चाहिए।

खैर चाहे जो हो, आप ने निश्चित रूप से नोट किया होगा कि नौवीं कांग्रेस में पारित संविधान की वे दो धाराएं दसवीं कांग्रेस में संविधान से खारिज कर दी गयी हैं, जहां माओ त्से-तुंग चिंतन को इस युग के मार्क्सवाद-लेनिनवाद के रूप में और इस युग को नये युग के रूप में उसी तरह से वर्णित किया गया है, जिस तरह ख्रुश्चेव ने वर्तमान युग को साम्राज्यवाद के बिखराव के युग के रूप में वर्णित किया है। जिन दो धाराओं को खारिज किया गया है, वे अग्रलिखित हैं : ''...माओ त्से-तुंग चिंतन इस युग का मार्क्सवाद-लेनिनवाद है, जिसमें साम्राज्यवाद सम्पूर्ण ध्वंस की ओर बढ़ रहा है, और समाजवाद विश्वव्यापी विजय की ओर अग्रसर हो रहा है ...साम्राज्यवाद, नव संशोधनवाद व विभिन्न देशों के प्रतिक्रियावादियों के खिलाफ समकालीन विश्व साम्यवादी आन्दोलन के महासंघर्ष में कॉमरेड माओ त्से-तुंग ने मार्क्सवाद-लेनिनवाद के सार्वजनीन (universal) सत्य को क्रांति के ठोस व्यवहार के साथ संयोजित किया है। धारावाहिकता में मार्क्सवाद-लेनिनवाद को, संरक्षित एवं विकसित किया है और उसे एक उच्चतर व **एक सम्पूर्ण रूप से नये स्तर पर** पहुंचाया है।'' (बल दिया गया है)।

यह अभी भी साम्राज्यवाद का युग है

इस प्रकार इन दो धाराओं के बारे में हमारी आलोचना को दसवीं कांग्रेस के इस निर्णय ने सही साबित कर दिया है। नौवीं कांग्रेस रिपोर्ट और संविधान पर चर्चा करते समय, मैंने यह दिखाने के लिए विस्तार से चर्चा की थी कि सबसे पहले, माओ त्से-तुंग को एक अग्रणी कम्युनिस्ट ऑथोरिटी स्वीकार करने के बावजूद, माओ त्से-तुंग चिंतन को किस वजह से इस युग का मार्क्सवाद-लेनिनवाद नहीं कहा जा सकता है, और दूसरे, हालांकि दूसरे विश्वयुद्ध के बाद

की स्थिति में बहुत से महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं, मगर वर्तमान युग अभी भी, लेनिन द्वारा वर्णित किया गया ''साम्राज्यवाद, युद्ध व सर्वहारा क्रांति का युग है'' और उसमें कोई मूलभूत गुणात्मक परिवर्तन नहीं हुआ है। मैं इस समस्त चर्चा को फिर से दोहराना नहीं चाहता हूं। बहरहाल, संविधान से इन दो धाराओं को हटा करके, दसवीं कांग्रेस ने हमारे विश्लेषण की सटीकता की पुष्टि की है।

हमारे वरिष्ठ (veteran) कॉमरेडों को अवश्य याद होगा कि जब ख्रुश्चेव समाजवाद में शांतिपूर्ण उपाय से संक्रमण के ख्वाब देख रहे थे और उन्होंने इसके पक्ष में सफाई देनी शुरू कर दी थी कि यह अब ''साम्राज्यवाद, युद्ध व सर्वहारा क्रांति'' का युग नहीं रहा है, बल्कि ''साम्राज्यवाद के बिखराव का युग है'', उस समय 1959-60 में भी मैंने 'युद्ध, शांति, शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व व समाजवाद में शांतिपूर्ण संक्रमण' (War and Peace, Peaceful Co-excistence and Peaceful Transition to Socialism) नामक अपने लेख में कहा था कि ''...हर मार्क्सवादी-लेनिनवादी के लिए यह जानना जरूरी है कि हरेक युग में अपने विकास की स्वाभाविक प्रक्रिया में नाना महत्वपूर्ण परिवर्तनों का परिलक्षित होना लाज़िमी है। मगर इन परिवर्तनों के बावजूद, उस युग के प्रधान विशिष्ट लक्षण क्रियाशीलता में मौजूद रहते हैं...'' अर्थात जैसा कि लेनिन ने वर्णित किया, यह साम्राज्यवाद, युद्ध व सर्वहारा क्रांति का ही युग है।

अब इसकी तुलना उससे करें जो चाऊ एन लाई ने दसवीं कांग्रेस रिपोर्ट में कहा है : ''लेनिन के देहांत के बाद विश्व-परिस्थिति में बहुत बड़े परिवर्तन हुए हैं। मगर युग नहीं बदला है। लेनिनवाद के मूलभूत सिद्धांत पुराने नहीं पड़े हैं; वे आज भी सैद्धांतिक आधार हैं, हमारे चिंतन का मार्गदर्शन (guiding) कर रहे हैं।'' अत: यह एक बात तो स्पष्ट है। अपने संशोधनवादी सिद्धांत को स्थापित करने के लिए ख्रुश्चेव ने ठीक जिस तरह इस युग को एक नये युग के रूप में वर्णित किया था, वैसे ही लिन बियाओ भी संशोधनवाद से लड़ने के नाम पर उसी ख्रुश्चेववादी सिद्धांत की जुगाली कर बैठे। अत: वर्तमान युग का मूल्यांकन करने में लिन बियाओ वही गलती कर बैठे जैसी ख्रुश्चेव ने की थी।

एकमात्र हमारी पार्टी ने ही नौवीं कांग्रेस का सही मूल्यांकन किया

जो सीपीसी का समर्थन करते हैं और माओ को एक ऑथोरिटी के रूप में मान्यता देते हैं, उन लोगों की नेतृत्व के बारे में अवधारणा क्या है मुझे मालूम नहीं है। लेकिन यह सच है कि नेता को हानि पहुंचाने में विरोधियों के बजाए उसके शिष्य ही घोर दोषी होते हैं। इतिहास में यही होता आया है। अपने नेता का अंध अनुसरण करके, अपने उद्देश्यानुसार गलत व्याख्याएं पेश करके, अपने नेता को गलती से परे मानकर शिष्यों ने ही अपने नेता की प्रतिष्ठा को धूमिल किया है। माओ त्से-तुंग के बहुत से अनुयायी, चाहे वे स्वीकारें या नहीं, उन्हें गलतियां करने से परे मानते हैं। इसके अलावा, हमारे देश में कुछ लोगों ने यह कहना भी शुरू कर दिया कि लिन बियाओ तो माओ से भी बड़े क्रांतिकारी हैं और उन्होंने ही सही लाइन पेश की है। ये लोग या तो अब कम्युनिस्ट विरोधी बन जायेंगे और उलजलूल बातें करेंगे या चुपचाप उल्टी बातें करेंगे। उग्र क्रांतिकारियों की हमेशा यही नियति हुई है।

अत: सीपीसी ही अन्तर्राष्ट्रीय क्रांति का झण्डा बुलन्द किए हुए है–इस बात को स्वीकार करने के बावजूद भी हमने नौवीं कांग्रेस रिपोर्ट में विभिन्न गलतियों की व्यापक आलोचना की थी, जो सीपीसी समर्थक या उसकी विरोधी किसी भी अन्य पार्टी ने नहीं की। सीपीसी का विरोध करने वालों का मुख्य ऐतराज यह था कि नौवीं कांग्रेस रिपोर्ट माओ-पूजा में लिप्त थी और उन्होंने उत्तराधिकारी शब्द पर कड़ी आपत्ति की। उन्होंने 'उत्तराधिकारी' की अवधारणा की मार्क्सवाद विरोधी के रूप में निन्दा की। इन दो आपत्तियों के अलावा सीपीआई(एम)* पोलित ब्यूरो ने सिर्फ एक बात और जोड़ी। वह यह कि सर्वहारा एकनायकत्व के तहत वर्ग संघर्ष के जारी रहने की अपरिहार्य जरूरत के ऐतिहासिक विश्लेषण

* भारत में एक पार्टी, जो कम्युनिज्म के नाम पर अब पूरी तरह श्रम और पूंजी के बीच समझौते की भूमिका निभा रही है। उस समय उसने सिद्धांतों के बारे में–गलत या सही–कुछ चिंता महसूस की थी, जो वह अब तनिक भी नहीं करती।

को लेनिन द्वारा पहले ही प्रस्तुत किया जा चुका था। इस कारण सीपीआई(एम) नौवीं कांग्रेस रिपोर्ट में लिन बियाओ द्वारा किये गये इस दावे के साथ सहमत नहीं हो सकी कि इन सवालों पर माओ त्से-तुंग के विचार मार्क्सवाद के सिद्धांत व व्यवहार में नयी संवृद्धियां हैं। उन्होंने उन्हीं सवालों पर लेनिन से कुछ और उद्धरणों का हवाला दिया है, जिन्हें लिन बियाओ रिपोर्ट में पेश नहीं किया गया है। लेकिन वे इससे आगे नहीं जा सके।

नौवीं कांग्रेस रिपोर्ट पर अपनी चर्चा में, हमने न सिर्फ इन बिन्दुओं पर चर्चा की, बल्कि इस पार्टी के स्टैण्डर्ड पर, नेता की अंधतापूर्वक प्रशंसा करने की उसकी आदत, सैद्धांतिक असंगतियों, लिन बियाओ नेतृत्व के चरित्र और माओ त्से-तुंग चिंतन को इस युग का मार्क्सवाद-लेनिनवाद कहा जा सकता है या नहीं, यदि नहीं, तो किस कारण से नहीं, ऐसे बहुत से महत्वपूर्ण विषयों पर अपना विश्लेषण पेश किया था। स्वभावत: सीपीसी की आलोचना करने के मामले में सीपीआई(एम) मुंह से जो कुछ भी कहे, इसके बावजूद उसने सीपीआई जैसे रवैये को लेकर सीपीसी को बदनाम करने और माओ की ऑथोरिटी को गौण करने के लिए ऐसा किया। मगर हमारी पार्टी ने माओ के सही नेतृत्व को सुदृढ़ करने के उद्देश्य के साथ बिरादराना दृष्टिकोण से सीपीसी की आलोचना की। कोई भी व्यक्ति इस बात को नोट करने में विफल नहीं हो सकता है। अत: हम पूरी विनम्रता के साथ यह दावा कर सकते हैं कि जहां तक हमें ज्ञान है, विश्व में एकमात्र हमारी पार्टी ने ही नौवीं कांग्रेस की रिपोर्ट व संविधान पर समग्र आलोचनात्मक चर्चा की। और आप ने भी देखा है कि सीपीसी ने दसवीं कांग्रेस में उन्हीं सवालों पर जो कुछ कहा है, वह लगभग हमारी पहले की आलोचना से मिलता-जुलता है। अत: उन्होंने वस्तुत: हमारे स्टैण्ड की सत्यता की ही पुष्टि की है।

इस प्रसंग में, मैं एक बात का उल्लेख किए बिना नहीं रह सकता। आप को पता है कि अपने जन्मकाल से ही हमारी पार्टी विश्व साम्यवादी नेतृत्व का अनुसरण करते वक्त भी, इस सिद्धांत का पालन करती आ रही है कि इस नेतृत्व के साथ हमारा

संबंध यांत्रिक नहीं है, बल्कि द्वन्द्वात्मक है, जब कभी भी उनका कोई स्टैण्ड हमें त्रुटिपूर्ण प्रतीत हुआ, तो उसे दिखाया है तथा साथ-साथ उसकी आलोचना भी करती आयी है। इसका कारण यह है कि मार्क्सवाद हमें सिखाता है कि जैसे-कि एक नेतृत्व के प्रति निष्ठा का अर्थ अंधानुकरण नहीं है, वैसे ही उसकी आलोचना करने का अर्थ भी अवज्ञा के साथ उसका निरादर करना नहीं है। इन दोनों के बीच फर्क करना हरेक मार्क्सवादी के लिए अत्यधिक महत्व रखता है, क्योंकि इस आलोचना का उद्देश्य नेतृत्व की गलतियों को दूर करने में उसकी सहायता करना और आलोचना की मार्क्सवादी रीति-नीतियों के आधार पर उसे सुदृढ़ करना है। मगर हमें इसके लिए व्यंग्य-विद्रूपों का सामना करना पड़ा था। जो लोग यह नहीं समझते थे कि नेतृत्व की आलोचना उसे सुदृढ़ करने के लिए की जाती है, वे हमारे कॉमरेडों का मजाक उड़ाया करते थे और कहा करते थे : ''आप लोग तो बहुत अक्लमन्द हैं। विश्व में कोई भी आप के नेता के समान बुद्धिमान एवं समझदार नहीं है। विश्व साम्यवादी आन्दोलन में उन बड़ी पार्टियों की आलोचना करने की तुम लोग कैसे हिम्मत करते हो, जब तुम लोगों की कुछ भी करने की औकात नहीं है?'' लेकिन अब हम देखते हैं कि बात ऐसी नहीं है कि चिंतन के लिए क्षमता सिर्फ इसीलिए सीमित हो जायेगी क्योंकि काम की क्षमता सीमित है—बराए मेहरबानी कार्ल मार्क्स तो अपने किसी भी लेख में या शोध-प्रबन्ध में इस तरह की कोई बात सूत्रबद्ध कर नहीं गये हैं! बल्कि ठीक इसके विपरीत वहां पाया जाता है। एक आदमी को सत्य को बुलन्द करने के लिए ''ज्वार के विरुद्ध भी जाना पड़ सकता है''—विश्व के तमाम महान मार्क्सवादी नेताओं ने हमें बार-बार यही सिखाया है।

दसवीं कांग्रेस में माओ त्से-तुंग ने फिर जोर देकर यह कहा है और यही शिक्षा पेश की है कि धारा के खिलाफ जाना ही तो एक अच्छे कम्युनिस्ट का गुण है। उन्होंने कहा है कि सही राजनीतिक लाइन को प्रतिष्ठित करने के हित में अच्छे कम्युनिस्ट धारा के विरुद्ध तैरने से भी कभी नहीं घबराते। अर्थात अच्छे

कम्युनिस्टों ने अलग-थलग पड़ जाने के डर से सही लाइन का कभी परित्याग नहीं किया है और अंततः वे ही विजयी हुए हैं।

वैचारिक व राजनीतिक लाइनें ही सब कुछ निर्धारित करती हैं

देखिए कि दसवीं कांग्रेस की रिपोर्ट में क्या कहा गया है : ''चेयरमैन माओ हमें सिखाते हैं कि 'वैचारिक व राजनीतिक लाइन की सटीकता या बेसटीकता ही सब कुछ निर्धारित करती है।' यदि किसी की कार्यदिशा गलत हो तो उसका पतन अवश्य ही होगा, चाहे वह केन्द्रीय, स्थानीय व सेना के नेतृत्व पर नियंत्रण ही क्यों न रखता हो। अगर किसी की कार्यदिशा सही है और शुरू में उसके साथ एक भी सैनिक नहीं है, तो उसके साथ सैनिक भी आ जायेंगे, और भले ही उसके पास राजनीतिक सत्ता नहीं है, राजनीतिक सत्ता भी अर्जित कर ली जायेगी। हमारी पार्टी के ऐतिहासिक अनुभव द्वारा और मार्क्स के समय से विश्व साम्यवादी आन्दोलन के तजुर्बे द्वारा इस बात की पुष्टि हुई है। लिन बियाओ ने 'हरेक चीज को अपने अधिकार (command) में और हरेक चीज को अपनी इच्छा पर निर्भर रखने की अपेक्षा की थी', मगर वह अपनी कमान में और अपनी मर्जी पर कोई भी चीज रखे बगैर खत्म हो गया। यह एक निर्विवाद एवं अकाट्य सत्य है।''

अतः हम क्या पाते हैं? हम सीपीसी को यह कहते हुए पाते हैं कि लिन बियाओ के पास हरेक चीज थी, मगर उसके पास सही राजनीतिक लाइन नहीं थी। और यही वजह है कि एक दिन जो भी चीज उसके अधिकार में थी, आज वह सब कुछ गंवा चुका है। यही बात लिऊ शाओची पर भी लागू होती है। एक समय उसने पार्टी, राज्य और सैनिक शक्ति–हर एक चीज पर नियंत्रण कायम कर लिया था। हालांकि उसके अधिकार में इतना सब कुछ था, मगर अफसोस! सर्वाधिक जरूरी चीज, सही राजनीतिक लाइन नहीं थी। इसीलिए उन सभी को इतिहास के कूड़ेदान में फेंक दिया गया है। और जिनके पास सिवाए सही राजनीतिक लाइन के कुछ भी नहीं था, उन्होंने आज सब कुछ अर्जित कर लिया है।

गौरतलब है कि यद्यपि सीपीसी एक ऐसी विराट, प्रतिष्ठित एवं गौरवशाली पार्टी है, फिर भी वह पार्टी की शक्ति से ज्यादा राजनीतिक लाइन की सटीकता या बेसटीकता पर ज्यादा जोर और सर्वाधिक महत्व दे रही है। वे अपने कैडरों, देशवासियों और विश्व के मजदूर वर्ग को इस तरह जांच-परख करने की शिक्षा नहीं दे रहे हैं कि चूंकि उनकी पार्टी इतनी बड़ी एवं ताकतवर है, सिर्फ इसी से यह साबित हो जाता कि उनकी राजनीतिक लाइन सही है।

लेकिन हमारे देश में दोनों बड़ी तथाकथित कम्युनिस्ट पार्टियां अपने पार्टी कार्यकर्ताओं व लोगों को ठीक उल्टे तरीके से सवाल को समझने की नसीहत दे रही हैं। वे सापेक्ष रूप से दूसरी पार्टियों से ज्यादा अर्जित अपनी ताकत व जन-समर्थन का इस्तेमाल करने की कोशिश कर रही हैं। विचारधारा व मूल राजनीतिक लाइन के विश्लेषण पर जोर दिये बगैर, वे पार्टी की ताकत को महत्व दे रही हैं, जो आज उनके पास है और इस प्रकार कार्यकर्ताओं के सामने व्याख्या कर रही हैं कि चूंकि उनकी पार्टी की ताकत बड़ी भारी है, इसीलिए उनकी राजनीतिक लाइन अवश्य सही होनी चाहिए, वरना उन्होंने किस तरह यह शक्ति अर्जित कर ली है? इस तरीके से, वे मूल राजनीतिक लाइन की जांच-परख करने के महत्व को नकार रही हैं और पार्टी के अंदर शक्ति के नशे में चूर होने की प्रवृत्ति को पैदा कर रही हैं। अगर सिर्फ इस अकेली बात का गौर से विश्लेषण किया जाये तो वही स्पष्ट कर देती है कि ये किस प्रकार की पार्टियां हैं। अत: आज जब समूचे विश्व में और खासकर हमारे देश में ज्वार के साथ तैरने और ज्यादा ताकतवर के साथ चलने के आम चलन का अवसरवादी रुझान राजनीतिक आन्दोलनों में व्याप्त है, तो मैं सोचता हूं कि अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति की एक ताकतवर क्रांतिकारी पार्टी सीपीसी ने जिस तरीके से विचारधारा व मूल राजनीतिक लाइन की सटीकता के सवाल को इतना महत्व दिया है, उसको मैं बहुत ही तात्पर्यपूर्ण मानता हूं।

सर्वहारा की असली पार्टी के रूप में एसयूसीआई का आविर्भाव

भारत की सर-जमीन पर हमारी पार्टी के गठन का आधार इसी सिद्धांत पर दृढ़ रहना था। अपनी पार्टी की शुरुआत से ही अब तक

हमने हमेशा ही इस मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धांत पर सर्वाधिक जोर दिया है। आज बहुत से नये कॉमरेड शायद यह समझने में बिल्कुल असमर्थ होंगे कि उस समय हमारी क्या स्थिति थी। याद रखें कि जब संख्या में हम चन्द मुट्ठीभर लोग एक विशाल देश में, वस्तुतः बिना किसी संसाधन के, सर्वहारा की एक असली क्रांतिकारी पार्टी का निर्माण करने का स्वप्न संजोए हुए थे, तब हम सभी वस्तुतः अप्रसिद्ध, अपरिचित और बहुत ही साधारण राजनीतिक कार्यकर्ता मात्र थे। उस समय हम में से एक भी प्रसिद्ध नेता नहीं था। दृढ़ अवधारणा, लगन एवं समर्पण, दृढ़ संकल्प, क्रांतिकारी निर्भीकता और सही राजनीतिक लाइन के सिवाय हमारे पास कोई दूसरी चीज नहीं थी, कतई कोई साधन नहीं था, न हीं कहने के लिए कोई भी अनुभवी कार्यकर्ता था। मगर सिर्फ विचारधारा व सही क्रांतिकारी लाईन के प्रति समर्पण के आधार पर तमाम कठिनाइयों व प्रतिकूलताओं का बहादुरी के साथ मुकाबला करते हुए उस समय की धारा के खिलाफ एक अविराम संघर्ष संचालित करने के लिए हम दृढ़ संकल्पित थे। याद रखें, उस समय, जब हमारे देश में तथाकथित कम्युनिस्ट पार्टी अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट नेतृत्व द्वारा मान्यता प्राप्त थी, तब राजनीतिक कार्यकर्ता और वे सभी लोग जो मार्क्सवाद-लेनिनवाद और साम्यवादी आन्दोलन के प्रति आकर्षित थे, स्वाभाविक ढंग से वे सीपीआई का समर्थन करने की तरफ झुकाव रखते थे।

यही हमारे रास्ते की भारी रुकावट थी। उन लोगों के मन में भी, जिन्हें हम सिद्धांत व राजनीतिक लाइन से संबंधित सवालों पर सहमत कर पाते थे और जो हमें कुछ-कुछ समझते भी थे, सही रास्ता ग्रहण करने में उन्हें दुविधाग्रस्त बनाने वाला एक सवाल बार-बार उठता था : 'आप इतनी छोटी पार्टी हैं। क्या आप अपनी मंजिल पर पहुंचने में समर्थ होंगे? क्या यह तनिक भी सम्भव है? आप की शक्ति और मेहनत व्यर्थ जा रही है।' वेटरन (वरिष्ठ) कॉमरेडों को अवश्य ही याद होगा, उस समय हम उन्हें क्या जवाब देते थे।

हम दो टूक शब्दों में उत्तर देते थे : 'बारीकी से जांच-परख कीजिए, आधारभूत राजनीतिक लाइन व ज्ञानमीमांसा के सभी

पहलुओं को समझते हुए क्या हमारी पार्टी का दृष्टिकोण और अभिमत (stand) सही है या नहीं। यदि वे सही हैं तो सिर्फ उन्हीं के आधार पर संघर्ष संचालित करना होगा। डरने से या किसी भी बहाने बिदक जाने से काम नहीं चलेगा, हर किसी को मौजूदा ज्वार धारा के खिलाफ जाना होगा; उस पार्टी को गलत मान लेने और उसमें शामिल होने को बहुत भारी भूल मान लेने पर भी, उसी कम्युनिस्ट नामधारी पार्टी में जाना होगा–चूंकि वह बड़ी है–इस रुझान के खिलाफ लड़ना होगा। ऐसी मानसिक शक्ति अर्जित करनी होगी। यदि यह सच हो कि खुद को कम्युनिस्ट कहने वाली पार्टी एक कम्युनिस्ट के चरित्र को लेकर गठित नहीं हुई है, और दरअसल वह एक पेटी बुर्जुआ सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी है, तब तो क्रांतिकारियों के पास एक क्रांतिकारी पार्टी निर्मित करने के लिए अविराम प्रयास करने के सिवाय दूसरा चारा ही नहीं है।' गौर कीजिए कि दसवीं कांग्रेस रिपोर्ट में एंगेल्स की एक बहुत ही महत्वपूर्ण शिक्षा उद्धृत की गयी है। एंगेल्स ने ठीक कहा था : ''सर्वहारा वर्ग का विकास हर जगह अन्दरूनी संघर्षों के साथ-साथ होता चला जाता है... और, जब मार्क्स व मेरी ही तरह किसी ने जिन्दगी भर तथाकथित सोशलिस्टों के खिलाफ औरों से कहीं अधिक कठोर संघर्ष किया हो (क्योंकि हमने पूंजीपति वर्ग को केवल एक वर्ग माना है और मुश्किल से कभी अपने को व्यक्तिगत पूंजीपति के साथ झगड़ों में उलझाया है) तब वह इस बात पर बहुत ज्यादा दुखी नहीं हो सकता कि अनिवार्य संघर्ष छिड़ गया है...।'' इन सब बातों का एक ही अर्थ है, अर्थात हर किसी के लिए सही लाइन पर मजबूती के साथ दृढ़ रहने और तिल मात्र भी न डिगने के मनोभाव को आत्मसात करना अनिवार्य है। इसीलिए यह कहा गया है कि यदि मूल राजनीतिक लाइन सही है, तो किसी भी दबाव के तहत लाइन पर दृढ़ रहने के लिए संघर्ष एक इंच भी इधर से उधर नहीं डिगता है। ऐसी मानसिक शक्ति को अर्जित करना जरूरी है। किसी को भी विचारधारा व मूल राजनीतिक लाइन से तनिक भी नहीं भटकना चाहिए और उनकी तरफ नहीं बह जाना चाहिए

जिनके पास सिर्फ ज्यादा जन लोक-बल शक्ति है तथा लोगों पर ज्यादा प्रभाव व कमाण्ड है।

हमने बार-बार कहा है कि यदि गलत सिद्धांत व मूल राजनीतिक लाइन वाली पार्टियों को किसी भी बहाने सुदृढ़ किया जाता है, तो इससे कोई सार्थक काम तो होगा ही नहीं, बल्कि इससे भी हानिकारक बात यह होगी कि ऐसी पार्टियां इस बढ़ी हुई ताकत को लेकर लोगों के जन-आन्दोलन का और भी ज्यादा अनिष्ट करेगीं और अंततः क्रांति के रास्ते में अधिक बड़ी बाधाएं खड़ी करेगीं। लेकिन अगर विचारधारा और बुनियादी राजनीतिक लाइन सही है, तो पार्टी की शक्ति, चाहे कार्य शुरू करते समय अल्प ही क्यों न हो, वह एक से दो, दो से चार, सौ से हजार और इस प्रकार लाखों लोगों का समर्थन हासिल करते हुए बढ़ती जायेगी–वह पार्टी अंततः राजनीतिक सत्ता पर कब्जा कर लेती है और विश्व को जीत लेती है। आप सभी जानते हैं कि इस मूलभूत शिक्षा की पकड़ हासिल करके ही हमारी पार्टी ने अपना सफर शुरू किया था। यह बुनियादी शिक्षा न सिर्फ वर्तमान समय के मार्क्सवाद-लेनिनवाद की शिक्षा है, बल्कि तमाम युगों की नीति-नैतिकता की महान शिक्षा रहती आयी है। हर युग में, सुदूर अतीत तक में भी, जब धर्म को विभिन्न बाधाओं के खिलाफ अपना रास्ता बनाना पड़ा, आगे बढ़ना और जबरदस्त प्रतिकूल बाधाओं के बीच अपना सिर ऊंचा उठाए रखना पड़ा था, तो उस समय धर्म प्रचारकों को भी इस सीख को बुलन्द करना तथा इसी शिक्षा को लेकर चलना पड़ा था। हालांकि शब्द रचना व वाक्य विन्यास तो एक जैसा ही प्रतीत होता है, मगर इस शिक्षा की उपलब्धि यानी पक्की समझदारी संघर्ष की विशेष विचारधारा और उद्देश्य के मुताबिक विभिन्न युगों में भिन्न रहती आयी है। जहां नीति-नैतिकता के इस अमूल्य बोध के बारे में धर्म-प्रचारकों की एक अवधारणा थी, तो बुर्जुआजी या पेटी-बुर्जुआजी की दूसरी, जबकि आज इस अवधारणा ने सर्वहारा क्रांतिकारियों के वर्ग-संघर्ष और जीवन की नयी-नयी जटिलताओं के आधार पर एक नया रूप ग्रहण कर लिया है। इस निरंतर परिवर्तनशील दुनिया में, किसी उसूल की समझदारी भी स्थिर एवं एक जैसी नहीं रहती, बल्कि यह परिवर्तनशील एवं

विकासमान है। काल विशेष की सीमाओं और समझदारी के विशेष परिमण्डल के दायरे में इसका एक विशेष रूप होता है। सिर्फ मार्क्सवादी-लेनिनवादी ही इस तथ्य को समझते हैं।

इसीलिए, जैसाकि मैं कह रहा था, एक अच्छी बात, एक सत्य, एक सही विश्लेषण, बहुत ज्यादा महत्व ग्रहण कर लेता है और लोगों के दिलो-दिमाग पर गहरी छाप छोड़ता है, जब वह प्रतिष्ठा और परम्परा की धनी एक सीपीसी जैसी पार्टी के नेतृत्व द्वारा प्रस्तुत किया जाता है बजाए हमारे जैसी एक छोटी पार्टी द्वारा जिसकी न तो अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता है और न बहुत ज्यादा सांगठनिक शक्ति है। इस प्रकार जिस बात पर हम हमेशा ही बहुत ज्यादा जोर देते आये हैं, उसकी अब दसवीं कांग्रेस ने पुष्टि कर दी है। यदि सही रूप में इसे समझा जाये, तो दसवीं कांग्रेस के इस विश्लेषण का तात्पर्य यह हो जाता है : यदि आप क्रांतिकारी बनना और क्रांति करना चाहते हैं, तो सत्य, विचारधारा और सही लाइन के लिए मौजूदा धारा के खिलाफ जाना सीखें। कठिन एवं दुष्कर संघर्ष के सामने कोई भी क्रांतिकारी कभी निराशा-हताशा का शिकार नहीं होता; बल्कि इसके उलट साहस एवं निर्भीकता के साथ कठिनाइयों का मुकाबला करना ही एक क्रांतिकारी का सच्चा परिचय होता है। इसके अतिरिक्त गलत लाइन से सही लाइन की पहचान करने के लिए गाइडलाइन के रूप में दसवीं कांग्रेस ने माओ त्से-तुंग को इस प्रकार उद्धृत किया : ''मार्क्सवाद पर अमल करें संशोधनवाद पर नहीं; एकताबद्ध हों एवं फूट के शिकार न हों; निष्कपट एवं ईमानदार बनें, और षड्यंत्र एवं साजिश न करें।'' आप सभी जानते हैं कि हमने सही लाइन के आधार पर अथक संघर्ष के आदर्श-वाक्य के साथ शुरुआत की, और आज भी हम इसी से निर्देशित होते हैं। हमारी पार्टी की असली ताकत हमारी पार्टी के कार्यकर्ताओं व नेताओं के ऐसे ही मानसिक गठन में निहित है।

इसमें कोई शक नहीं है कि दसवीं कांग्रेस की यह गाइडलाइन हमारे लिए तभी उपयोगी होगी यदि हमारे कॉमरेड सही रूप में दिखा सकें कि क्रांति को सफलीभूत करने के इतने लम्बे अरसे के बाद भी सीपीसी अभी भी सही लाइन का अनुसरण करने के

संघर्ष को ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण संघर्ष मानती है, उसने शक्ति के मुकाबले विचारधारा व सिद्धांत को प्राथमिकता दी है तथा वह सही विचारधारा व सिद्धांतों को ठोस रूप देने के लिए ही शक्ति निर्मित करने की कोशिश कर रही है।

यहां एक स्पष्टीकरण देने की मांग की गयी है कि क्या दसवीं कांग्रेस ने प्रभुत्व के लिए दो महा (super) शक्तियों के बीच संघर्ष को वर्तमान युग में प्रमुख द्वन्द्व के रूप में मान लिया है। वास्तव में इस सवाल का कोई आधार ही नहीं है। ऐसी भ्रान्ति यह समझने में असमर्थता की वजह से पैदा हुई है कि नौवीं कांग्रेस की यही मूल राजनीतिक लाइन है, जिसे वस्तुतः लिन बियाओ की विरासत से मुक्त और कुछ खामियों एवं गलतियों को सुधारने के बाद, दसवीं कांग्रेस में ग्रहण कर लिया गया है।

नव स्वाधीनता प्राप्त देशों के बारे में हमारा मूल्यांकन सही था

नौवीं कांग्रेस रिपोर्ट पर चर्चा करते वक्त, वर्तमान विश्व के चार प्रमुख द्वन्द्वों की चर्चा के दौरान, हमने कहा कि नव-स्वाधीनता प्राप्त राष्ट्रवादी देशों का द्वन्द्व एक ओर साम्राज्यवाद के साथ और दूसरी ओर समाजवादी खेमे के साथ विभिन्न रूपों में दिखाई दे रहा है और उसे समुचित महत्व दिया जाना चाहिए।

आप को पता है कि 1959-60 में बहुत पहले ही हमने एशिया, अफ्रीका व लेटिन अमेरिका के नव-स्वाधीनता प्राप्त राष्ट्रवादी देशों के आविर्भाव को दूसरे विश्व युद्ध के बाद की अवधि में अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में एक बहुत ही महत्वपूर्ण घटना की संज्ञा दी थी। और, एक ओर साम्राज्यवाद के साथ और दूसरी ओर समाजवादी देशों के साथ इन नव-स्वाधीनता प्राप्त बुर्जुआ राष्ट्रवादी देशों के द्वन्द्व को लेनिन द्वारा प्रतिपादित इस युग के चार प्रमुख द्वन्द्वों के साथ-साथ पांचवें प्रमुख द्वन्द्व के रूप में स्वीकार करने में अगर किसी को कोई हिचक व दुविधाएं हों, तो हमने सुझाव दिया था कि इस पर समान रूप से बल व महत्व दिया जाये क्योंकि यह अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं और चार प्रमुख द्वन्द्वों को प्रभावित कर रहा है—मानो यह पांचवें प्रमुख द्वन्द्व के रूप में कार्य कर रहा है।

इसका कारण यह है कि नव-स्वाधीन राष्ट्रवादी देशों के आविर्भाव को केन्द्रित करके जो द्वन्द्व पैदा हुआ, उसे साम्राज्यवाद बनाम राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम के द्वन्द्व की श्रेणी में वस्तुतः नहीं रखा जा सकता था। इसीलिए, यदि कोई वर्तमान विश्व में चार प्रमुख द्वन्द्वों को प्रभावित करने में इस द्वन्द्व के सही चरित्र व भूमिका को न समझे, तो लेनिन द्वारा निर्दिष्ट सिर्फ चार प्रमुख द्वन्द्वों पर निर्भर करना जड़सूत्रवाद के तुल्य होगा।

इन 14-15 वर्षों के बाद दसवीं कांग्रेस रिपोर्ट में तीसरी दुनिया की भूमिका पर जब सीपीसी ने चर्चा की, तो हालांकि ठीक हू-ब-हू हमारी तरह न सही, फिर भी काफी हद तक हमारे जैसा ही उसने रुख अपनाया है। दसवीं कांग्रेस रिपोर्ट में यह कहा गया है : ''तीसरी दुनिया की जागृति और विकाससमकालीन अन्तर्राष्ट्रीय संबंध में **एक प्रमुख घटना** है। तीसरी दुनिया...अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में उत्तरोतर अधिक **महत्वपूर्ण भूमिका** निभा रही है।'' (बल दिया गया है)

अतः आप देखते हैं कि तीसरी दुनिया के आविर्भाव को समकालीन अन्तर्राष्ट्रीय संबंध में, अर्थात लेनिन द्वारा प्रतिपादित चार प्रमुख द्वन्द्वों को प्रभावित करने वाली एक प्रमुख घटना के रूप में समझा गया है। इसके अलावा, यह भी कहा गया है कि तीसरी दुनिया, अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में अर्थात लेनिन द्वारा प्रदर्शित चार प्रमुख द्वन्द्वों को प्रभावित करने वाली, एक अधिकाधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। यदि तीसरी दुनिया के आविर्भाव से अभिप्राय एशिया, अफ्रीका व लेटिन अमेरिका के नव-स्वाधीनता प्राप्त राष्ट्रवादी देशों से है, तब तो दसवीं कांग्रेस में इस अभिमत (stand) के माध्यम से वे वस्तुतः इस मुद्दे पर 1959-60 के हमारे निष्कर्ष से सहमत हुए हैं। मगर नव-स्वाधीनता प्राप्त राष्ट्रवादी देशों के आविर्भाव तथा एक ओर साम्राज्यवादी देशों के साथ और दूसरी ओर समाजवादी देशों के साथ उनके द्वन्द्व पर एक नये पांचवें द्वन्द्व के रूप में गौर करने के तरीके पर हमने चर्चा की है—हालांकि ये देश एक विशेष स्थिति में एक साम्राज्यवाद-विरोधी भूमिका निभाते हैं, वहीं उनमें से उन्नत देश खुद भी भविष्य में प्रच्छन्न साम्राज्यवादी चरित्र हासिल

कर सकते हैं और वस्तुतः अपने-अपने देशों में जन आन्दोलनों को कुचलने में साम्राज्यवाद के एजेन्ट के रूप में भूमिका निभा सकते हैं–सीपीसी ने इस मामले को इस तरह समझा है या नहीं, यह एक अलग सवाल है।

दसवीं कांग्रेस रिपोर्ट के उपरोक्त अनुच्छेद के अंत में यह कहा गया है: ''**राष्ट्रीय स्वाधीनता प्राप्त करने और उसकी सुरक्षा करने** तथा **राष्ट्रीय सार्वभौमिकता** व राष्ट्रीय संसाधनों की **रक्षा** के लिए एशिया, अफ्रीका व लेटिन अमेरिका के लोगों का संग्राम और भी ज्यादा गहरा गया है और विस्तृत हो गया है।'' (बल दिया गया)। आप ने अवश्य ही ध्यान दिया होगा कि एशिया, अफ्रीका व लेटिन अमेरिका के लोगों के संग्राम को स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए संग्राम के रूप में ही नहीं, बल्कि अर्जित स्वाधीनता की रक्षा करने और यहां तक कि कुछ मामलों में सार्वभौमिकता की रक्षा करने के संघर्ष के रूप में वर्णित किया गया है। इसका तो एक ही निहित अर्थ हो सकता है, वह यह कि दसवीं कांग्रेस में अब नव-स्वाधीन देशों या कम से कम उनमें से कुछ देशों को सीपीसी सम्प्रभुता सम्पन्न राष्ट्रीय बुर्जुआ देश मानती है, उन देशों की पूंजीवादी अर्थव्यवस्था चाहे कितनी भी पिछड़ी हो, जो वस्तुतः लेनिन के शब्दों में इन देशों के लिए पूंजीवादी राज्य मशीन (state machines) के अलावा और कुछ भी नहीं सोचा जा सकता है।

अतः सीपीसी की दुहाई देकर जो बात तथाकथित मार्क्सवादी-लेनिनवादियों का एक ग्रुप कहता है, इसका कोई वास्तविक आधार ही नहीं है कि नव-स्वाधीनता प्राप्त राष्ट्रवादी हरेक देश जनता की जनवादी क्रांति के स्तर में है। वास्तव में, ये तथाकथित मार्क्सवादी-लेनिनवादी, काल व स्थान के किसी संदर्भ के बगैर, कॉमिन्फार्म में झदानोव (Zhdanove) द्वारा और साथ-साथ सीपीसी के विश्लेषण द्वारा निर्धारित जनता की जनवादी क्रांति के सिद्धांत को बगैर सोचे-विचारे अंधानुकरण की अपनी प्रवृत्ति के कारण एक ऐसे गलत निष्कर्ष पर पहुंचे हैं। अब दसवीं कांग्रेस में सीपीसी का यह मंतव्य हमारी पार्टी द्वारा लिये गये उस अभिमत की सुस्पष्ट व जबर्दस्त पुष्टि के रूप में आया है, जिसमें आजादी

प्राप्त करने के बाद से ही भारतीय राज्य सत्ता को राष्ट्रीय बुर्जुआ राज्य परिभाषित किया गया था, यानी एक पूंजीवादी राज्य व्यवस्था यद्यपि पिछड़ी हुई।

हमने अपने पुराने लेखों में एक अन्य महत्वपूर्ण मुद्दे पर जोर देकर कहा है : जब नव-स्वाधीन राष्ट्रवादी देश युद्ध व शांति के सवाल पर साम्राज्यवादी शक्तियों का विरोध करते हैं, तब उनका समर्थन करना एक बात है, मगर यह समर्थन देते समय, इन नव-स्वाधीनता प्राप्त देशों की ''शांति नीति'' को एक समाजवादी देश की शांति-नीति के तुल्य समझना तो बिल्कुल अलग बात है। प्रसंगवश इस संदर्भ में, मैं एक अन्य बिन्दु पर भी आप का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं। हम पाते हैं कि जो लोग इन नव-स्वाधीनता प्राप्त राष्ट्रवादी देशों में राज्य के चरित्र की सही समझ हासिल नहीं कर सके, वे इसे समझने की अपनी असमर्थता के कारण ऐसे देशों की साम्राज्यवाद-विरोधी नीति का समर्थन करते समय खुद ही एक स्व-विरोध का शिकार हो गये हैं। जनवादी क्रांति के अपने सिद्धांत के अनुसार उन्होंने इन देशों के उसी पूंजीपति वर्ग पर साम्राज्यवाद का पिछलग्गू होने का ठप्पा लगाया है जिसे उसकी साम्राज्यवाद-विरोधी नीति के कारण, उन्होंने पलटकर फिर उन्हें प्रगतिशील होने की संज्ञा दे डाली है। यह बात हमारी समझ से तो बाहर है कि यह कैसे संभव है। हमने इस मुद्दे पर न सिर्फ सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी के बल्कि सीपीसी के दृष्टिकोण की भी आलोचना की है। बान्दुंग सम्मेलन (कान्फ्रेंस) के समय भी, जब उन्होंने 'हिन्दी-चीनी भाई-भाई' का नारा उछाला, उन्होंने नेहरू को शांति के चैम्पियन के रूप में एक ऐसे तरीके से प्रचारित किया कि इसके माध्यम से न तो एक समाजवादी देश की शांति-नीति के साथ नेहरूजी की शांति नीति का क्या फर्क है—इसे साफ तौर पर उजागर किया गया, न ही तत्कालीन विशेष स्थिति में साम्राज्यवाद-विरोधी शांति नीति का अनुसरण करने में भारतीय पूंजीपतियों के विशेष वर्ग-स्वार्थ को बेनकाब किया गया। इसीलिए, इन नव-स्वाधीनता प्राप्त राष्ट्रवादी देशों के पूंजीपति वर्ग द्वारा अनुसरण की गयी साम्राज्यवाद-विरोधी शांति नीति तथा 'शांति को

सुरक्षित' करने के लिए विशेष कदमों का अविवेकपूर्ण ढंग से गुणगान किया गया है। मगर समाजवादी देशों की शांति-नीति के साथ इन देशों की शांति नीति के फर्क को, इन देशों के राज्य ढांचे और प्रशासनिक तंत्र में दिन-पर-दिन विभिन्न रूपों में पैदा हो रहे फासीवाद की संभावनाओं को एवं इन देशों में से अधिक उन्नत देशों में अपना मनहूस सिर उठाने में प्रयासरत साम्राज्यवादी व विस्तारवादी रुझान को तथा यह कि, इस पहलू से यही देश एशिया, अफ्रीका व लेटिन अमेरिका के देशों में वस्तुतः समाजवादी आन्दोलन की वृद्धि व प्रगति को रौंदने में विश्व साम्राज्यवाद-पूंजीवाद के एजेन्टों के रूप में प्रमुख भूमिका निभाने वाले हैं—इन खतरनाक पहलुओं को नहीं दिखाया गया और अविराम वैचारिक संघर्ष के माध्यम से इन बातों के बारे में लोगों को सचेत करने के लिए कतई कोई प्रयास नजर नहीं आया है। हमने अपने पुराने साहित्य में इन खतरों से आगाह किया है।

एक रुझान ढक लेता दूसरे रुझान को

इस रिपोर्ट से ऐसा प्रतीत होता है कि यद्यपि उन्होंने इस विषय को अलग रूप में अभिव्यक्त किया है फिर भी वे इस विषय के महत्व को सिद्धांतः समझने में सक्षम हुए हैं। उन्होंने एक महत्वपूर्ण बात कही है। उन्होंने कहा है : ''आज दोनों अन्तर्राष्ट्रीय व घरेलू राष्ट्रीय संघर्षों में अतीत के रुझानों जैसे रुझान अभी भी हो सकते हैं, जब बुर्जुआ के साथ गठबंधन एवं मैत्री (alliance) थी, जरूरी संघर्षों को भुला दिया गया, और जब बुर्जुआ के साथ अलगाव हो गया, तो विशेष परिस्थितियों में एक गठबंधन एवं मैत्री की संभावना को भुला दिया गया।'' सीपीसी के इतिहास से यह उद्धृत करके इसी तथ्य को स्थापित करने की कोशिश की गयी है। दसवीं कांग्रेस की रिपोर्ट में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है : ''चेयरमैन माओ ने हमें निरंतर सिखाया : यह नोट करना अनिवार्य है कि एक रुझान दूसरे रुझान को ढक लेता है। 'केवल मैत्री एवं गठबंधन कायम करने, जरा भी संघर्ष न करने' के छन तू श्यू के 'दक्षिणपंथी' अवसरवाद के विरोध ने 'केवल संघर्ष करने, बिल्कुल मैत्री एवं गठबंधन न

करने' के बाङ मिङ के 'वामपंथी' अवसरवाद को ढक लिया था। वाङ मिङ के 'वामपंथी' भटकाव को दूर करने के प्रयत्नों ने छन तू श्यू के दक्षिणपंथी भटकाव को ढक लिया था।... सही समय पर ऐसी प्रवृतियों एवं रुझानों को समझना और उन्हें दूर करने के लिए अपनी पूरी कोशिश करना हम से अपेक्षित है।''

इस संदर्भ में मैं संयुक्त आन्दोलनों में 'एकता-संघर्ष-एकता' के उसूल का अनुसरण करने की जरूरत पर संक्षिप्त चर्चा करना चाहूंगा। यह महत्वपूर्ण बुनियादी उसूल तो संयुक्त मोर्चों के अंदर वैचारिक संघर्षों को संचालित करने की अपरिहार्य जरूरत है, जिसके बारे में हम देश में कम्युनिस्ट आन्दोलन व वामपंथी जनवादी आन्दोलन में दक्षिणपंथी व वामपंथी तमाम किस्म के अवसरवादी भटकावों के खिलाफ समझौताहीन ढंग से लड़ते आ रहे हैं। आश्चर्यजनक बात यह है कि हमारी पार्टी द्वारा 'एकता-संघर्ष-एकता' के इस मार्क्सवादी-लेनिनवादी उसूल के अनुसरण के खिलाफ मुख्य रूप से दो बड़ी तथाकथित कम्युनिस्ट पार्टियों की ओर से जबरदस्त दबाव पड़ा है और अभी भी पड़ रहा है। वे हमारे द्वारा अनुसरण किये जा रहे इस मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धांत को अपने पार्टी कार्यकर्ताओं, समर्थकों और व्यापक जनसाधारण के सामने गलत रूप में पेश कर रहे हैं और यह कहकर उन्हें भ्रमित कर रहे हैं कि हम तो इसे मात्र कथनों में मानते हैं, बल्कि करनी में इसका विरोध करते हैं, क्योंकि हम संयुक्त मोर्चे के अंदर सीपीआई व सीपीआई(एम) की आलोचना करते हैं--हालांकि तथ्य तो यह है कि हम तो हमेशा सिर्फ विचारधारा, सिद्धांत एवं संग्राम के रणकौशल (tactics) के सवालों पर ही उनकी आलोचना करते हैं। विभिन्न समयों पर साझे या मुख्य शत्रु के खिलाफ संघर्ष में विभिन्न मुद्दों के आधार पर वाम व जनतांत्रिक ताकतों के बीच एकता पैदा हुई है। घटकों के बीच अलग-अलग राजनीतिक लाइनों के कारण, इस एकता के अंदर भी संघर्ष के उद्देश्य को केन्द्रित करके, रणकौशल, तौर-तरीकों व दृष्टिकोण से संबंधित मामलों पर मतभेद पैदा होना अनिवार्य है और संयुक्त संघर्षों को चलाते वक्त इन मुद्दों पर अविराम वैचारिक संघर्ष छेड़ने के महत्व की कभी भी उपेक्षा नहीं की जा सकती है। सिर्फ किसी भी

तरह अपना-अपना नेतृत्व कायम रखने के निहित स्वार्थ पर गिद्ध-दृष्टि रखने के साथ वाम या दक्षिण अवसरवादी भटकाओं से इसके महत्व को कम नहीं किया जा सकता है। एक ऐसे समय भी जब हम मुख्य शत्रु या विशेष खतरे के खिलाफ संयुक्त मोर्चे का निर्माण करके संयुक्त संघर्षों को संचालित करने की जरूरत अनुभव करते हैं, उस समय भी हम यह नहीं भूल सकते कि मुख्य शत्रु या खतरे के खिलाफ संयुक्त मोर्चे के अंदर ही आन्दोलन को गुमराह करने के लिए एक-दूसरी ही किस्म के खतरे छिपे रहते हैं। इसके अलावा, संयुक्त आन्दोलन के अंदर विचारधारा, लाइन व दृष्टिकोण को केन्द्रित करके निरन्तर पैदा होने वाले संघर्ष से इनकार करने का अर्थ परिणाम में, नीति सिद्धांत, व राजनीतिक लाइन का ऐसा मुंह से बिना कहे ही वस्तुतः परित्याग करना है जो सिद्धांत और मूल राजनीतिक लाइन पर समझौता करने के समान है। इसका कारण यह है कि एक विशेष समय पर साझे शत्रु के खिलाफ या मुख्य खतरे या एक रुझान के खिलाफ संघर्ष में, उस विशेष समय पर एक निश्चित व सर्वमान्य कार्यक्रम के आधार पर हमारे एकताबद्ध होने पर भी आन्दोलन के रणकौशल, तौर-तरीकों, सिद्धांतों, रुख (approach) व दृष्टिकोण को केन्द्रित करके उस संयुक्त आन्दोलन में मतभेद पैदा होना अनिवार्य है, बशर्ते कि हम जिन विभिन्न बुनियादी राजनीतिक लाइनों को मानते हैं, उनको वस्तुतः महत्व देते हैं।

इसलिए वे लोग गलत हैं, जो यह मानते हैं कि चूंकि विचारधारा, दृष्टिकोण व मूल राजनीतिक लाइन में मतभेद है, इसलिए न तो एकता व संयुक्त आन्दोलन और न ही संयुक्त मोर्चा गठित किया जा सकता है; उसी तरह वे लोग भी गलत हैं, जो यह सोचते हैं कि क्योंकि विशेष मुद्दों या कार्यक्रम के आधार पर संयुक्त आन्दोलन या संयुक्त मोर्चा बना है, इसलिए आन्दोलन के उद्देश्यों, रणकौशल, तौर-तरीकों व सिद्धांतों या रुख व दृष्टिकोण को लेकर आपसी आलोचना या वैचारिक संघर्ष संयुक्त संघर्ष में बाधा डालते हैं। ये दोनों ग्रुप या तो वाम या दक्षिण भटकाव के शिकार हैं। उनमें से एक ग्रुप 'सम्पूर्ण एकता और कोई संघर्ष नहीं' प्रचारित करता है, जबकि दूसरा ग्रुप 'सम्पूर्ण संघर्ष और कोई एकता

नहीं' का उपदेश देता है। हमारी राय है कि चूंकि विचारधारा व बुनियादी राजनीतिक लाइन में मतभेद मौजूद है, इसलिए वे संयुक्त आन्दोलन या संयुक्त मोर्चे में भी प्रतिबिम्बित होते हैं। लेकिन इनसे एकता में बाधा डालने की या संयुक्त आन्दोलन को कमजोर करने की अपेक्षा नहीं है। बल्कि उल्टे, जन-साधारण के संयुक्त संघर्ष के ही स्वार्थ में संयुक्त आन्दोलन के अंदर परस्पर विरोधी लाइनों के बीच स्वस्थ वैचारिक संघर्ष चलाने की निर्विवाद एवं अनिवार्य जरूरत है ताकि ये आन्दोलन अपनी परिणति पर पहुंचाये जा सकें, क्योंकि विचारधारा व सिद्धांत पर समझौता करने से संयुक्त आन्दोलन ही कमजोर होगा और अंततः खुद एकता ही भंग हो जायेगी। सीपीसी की दसवीं कांग्रेस ने एकता-संघर्ष-एकता के इस मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धांत और अतीत में मार्क्सवादी-लेनिनवादी आन्दोलनों के अनुभव से हासिल सत्य को जोर देकर प्रस्तुत किया है कि एक अवसरवादी शक्ति या रुझान के खिलाफ संघर्ष के अंदर एक दूसरी अवसरवादी शक्ति या रुझान छिपा रहता है।

शांति या युद्ध-दोनों ही संभावनाएं समान रूप से वास्तविक हैं

गौर कीजिए कि सीपीसी की दसवीं कांग्रेस ने किस तरह हमारी पार्टी के एक अन्य महत्वपूर्ण विश्लेषण की पुष्टि की है। जब सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के संशोधनवादी ख्रुश्चेव नेतृत्व ने लेनिन के अति गंभीर शोध-प्रबंध (thesis)—साम्राज्यवाद युद्ध की सृष्टि करता है और युद्ध की अनिवार्यता का नियम—के बारे में खुलेआम कहना शुरू किया कि वह गैर-कारगर हो गया है, उन्होंने युद्ध के खतरे को कम करके आंका और मात्र शांति की संभावना पर एक तरफा जोर देना शुरू किया, तो लेनिन व स्तालिन के शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व के सिद्धांत को वस्तुतः शांतिपूर्ण समर्पण में परिणत कर डाला, साम्राज्यवाद के बिखराव के युग के रूप में वर्तमान युग को नये सिरे से वर्णन करना शुरू कर दिया, वह नाभिकीय ब्लैकमेलिंग की अमेरिकी नीति के फन्दे में फंस गया, या वह अमेरिकी साजिश में लिप्त हो गया—इसे आज आप चाहे

जिस तरीके से समझें। और व्यक्तिपूजा से लड़ने के नाम पर स्तालिन की प्रतिष्ठा का वस्तुतः नामो-निशान मिटाना (destalinization) शुरू कर दिया–तब विश्व कम्युनिस्ट हलकों में इन सवालों पर गंभीर मतभेद पैदा हो गये और सीपीसी के साथ मतभेद खुलकर सामने आ गये। जब ख्रुश्चेव के संशोधनवादी चिंतन से लड़ने के लिए सीपीसी द्वारा प्रकाशित नाना दस्तावेजों, पर्चों व लेखों द्वारा प्रभावित होने के कारण, बहुत से देशों में कम्युनिस्टों ने संशोधनवाद का विरोध करना शुरू किया, तब संशोधनवाद के खिलाफ उनके द्वारा छेड़े गये आन्दोलन में ही एक अन्य छिपा हुआ रुझान स्पष्ट रूप में देखा जा सकता था। यह था शांति-आन्दोलन, शांति-वार्ता और खुद शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की नीति की उपयोगिता को नकारने का झुकाव। इसकी वजह से ही, उन्होंने सिर्फ युद्ध के खतरे पर एक तरफा जोर देना जारी रखा और संदर्भ से काट कर लेनिन, स्तालिन व माओ से ऐसे उद्धरण पेश करने शुरू कर दिये, जिसने एक ऐसी भ्रान्ति भी पैदा कर दी मानो सीपीसी शांति को संरक्षित करने और साम्राज्यवादियों पर शांति थोपने की ठोस संभावना से इनकार कर रही है। मैंने नौवीं कांग्रेस रिपोर्ट पर चर्चा करते समय दिखाया था कि यह धारणा कितनी गलत है। ऐसी एकांगी बहस (वाद-विवाद) के परिणामस्वरूप यह भ्रान्ति इतनी ज्यादा बढ़ गयी कि यह भ्रम पैदा होने लगा कि मानो सीपीसी लेनिन व स्तालिन द्वारा प्रतिपादित शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की नीति के विरुद्ध है और युद्ध के जरिये समाजवाद व कम्युनिज्म के विस्तार व प्रसार की वकालत कर रही है।

अब दसवीं कांग्रेस द्वारा पुष्टि किए गए हमारी पार्टी के विश्लेषण की जांच-परख इसी पृष्ठभूमि में की जानी चाहिए। 1959-60 में ही बहुत अरसा पहले, जब ये सब विवाद चल रहे थे, तब हमने दिखाया था कि केवल शांति आन्दोलन पर एकतरफा जोर देना और शांति रक्षा की संभावना को ही बढ़ा-चढ़ाकर कहना या युद्ध के खतरे पर एकतरफा ढंग से बल देना, दोनों ही गलत हैं। हमने विश्लेषण किया कि वर्तमान युग में, अगर राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम, पूंजीवादी देशों में मजदूर वर्ग के क्रांतिकारी आन्दोलन

तथा देश-देश में शांति-आन्दोलन कमजोर न हों, यदि समाजवादी खेमा सही रास्ते पर अडिग रहे, यदि उनकी राजनीति सही रहे और अगर आक्रमण व दखलअंदाजी की साम्राज्यवादी नीति के खिलाफ निरन्तर सख्त निगरानी रखी जाए, तो साम्राज्यवादी वस्तुतः युद्ध छेड़ने में समर्थ नहीं होंगे और ज्यों ही वे युद्धों की साजिश रचेंगे, वे समाप्त कर दिये जायेंगे। लेकिन अगर समाजवादी खेमे का नेतृत्व भटक जाये, यदि उसमें फूट पड़ जाये और अगर उसकी राजनीतिक लाइन ही गलत हो जाए, तो युद्ध किसी भी वक्त छिड़ सकता है, क्योंकि युद्ध के लिए तमाम आर्थिक व राजनीतिक कारक वहां विद्यमान हैं। यह था हमारा विश्लेषण। दूसरे विश्वयुद्ध के बाद की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति के व्यापक मूल्यांकन के आधार पर हमने दो टूक शब्दों में घोषणा की थी कि बदली हुई परिस्थितियों में एक ओर साम्राज्यवादियों पर शांति थोपने और शांति-रक्षा करने की वास्तविक संभावना है और, दूसरी ओर युद्ध छिड़ने का वास्तविक खतरा भी मौजूद है यदि समाजवादी देश, कम्युनिस्ट, देश-देश में क्रांतिकारी आन्दोलन और जन-आन्दोलनों में उपर्युक्त सतर्कता में ढील बरतें या गलतियां करें। दोनों संभावनाएं ही वास्तविक हैं। अंततः कहीं जाकर अब युद्ध व शांति पर अपने इस विश्लेषण की निश्चित शब्दावली में पुष्टि करते हुए हम सीपीसी को अपनी दसवीं कांग्रेस में पाते हैं। यह हमारी पार्टी के लिए कम गौरव की बात नहीं है। दसवीं कांग्रेस रिपोर्ट में कहा गया है: ''एक नये विश्वयुद्ध का खतरा अभी भी मौजूद है, और तमाम देशों के लोगों को अवश्य ही तैयार रहना चाहिए। लेकिन आज विश्व में क्रांति ही मुख्य रुझान है। एक ऐसे युद्ध को तब तक रोकना संभव होगा, जब तक विश्व के तमाम देशों के जन-समूह जो अधिकाधिक जाग्रत एवं सचेत हो रहे हैं, अपना दृष्टिकोण साफ एवं स्पष्ट रखे हुए हैं, अपनी चौकसी को बढ़ा रहे हैं, एकता को मजबूत कर रहे हैं और संघर्ष में दृढ़ एवं अडिग हैं। यदि साम्राज्यवादी एक ऐसे युद्ध को छेड़ने पर तुल जायें, तो इससे निश्चित रूप से विश्व-व्यापी पैमाने पर एक अधिक बड़ी क्रांति पैदा होगी और

यह उनके सर्वनाश को निमंत्रण देगा।'' आप जानते हैं कि सोवियत और चीनी नेतृत्व इन तमाम मुद्दों पर दो चरम पोजीशनों से अभी तक लड़ते आ रहे थे। अपनी सीमित शक्ति के कारण हालांकि हम विश्व कम्युनिस्ट आन्दोलन में विचारों को प्रभावित नहीं कर सके थे, मगर यह आज अवश्य ही स्वीकार किया जायेगा कि इन मुद्दों पर हमारा विश्लेषण ही सही था। कम से कम दसवीं कांग्रेस इस बात की पुष्टि करती है।

यहां उपस्थित वेटरन (वरिष्ठ) कॉमरेड जानते हैं कि संशोधनवादी ख्रुश्चेव व उसके षड्यंत्रकारी गुट द्वारा सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी का नेतृत्व हथियाने के बाद से ही उन्होंने लेनिन द्वारा प्रतिपादित साम्राज्यवाद, युद्ध और सर्वहारा क्रांति के युग में युद्ध, शांति व शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व संबंधी सवालों पर लेनिन व स्तालिन की मूल शिक्षाओं व निष्कर्षों को संशोधनवादी दृष्टिकोण से गड्डमड्ड करने की कोशिश करनी शुरू कर दी। यद्यपि सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी की बीसवीं कांग्रेस ने कुछ महत्वपूर्ण मुद्दे उठाये थे, मगर हमने यह दिखाने के लिए विश्लेषण किया कि इसमें लेनिनवाद से भटकाव एवं संशोधनवाद की बाढ़ ला देने की संभावना अंतर्निहित है। इस बारे में अत्यंत तर्कसंगत एवं न्यायसंगत ढंग से हम यह दावा कर सकते हैं कि सिर्फ हमने ही उन दिनों विश्व की कम्युनिस्ट पार्टियों को आगाह किया था। आप को पता ही है कि उस वक्त ख्रुश्चेव व मिकोयान की टिप्पणियों पर हमारी आलोचना कितनी कड़ी थी। उस अवधि के हमारे भाषण, लेख, पर्चे और विभिन्न दस्तावेज इसकी पुष्टि करते हैं। मगर विश्व की अन्य किसी पार्टी के, यहां तक कि सीपीसी या माओ त्से-तुंग किसी के भी लेखों, वक्तव्यों-विश्लेषणों में यह रुख एवं दृष्टिकोण नहीं है, कम से कम ऐसा मेरी जानकारी में नहीं है। बल्कि 20वीं कांग्रेस के बाद, जिसके मुख्य शिल्पी ख्रुश्चेव और मिकोयान थे, और जिसमें संशोधनवाद की बाढ़ लाने की संभावना अंतर्निहित थी, सीपीसी ने पथ आलोकित करने वाली घटना के रूप में इस कांग्रेस का अभिनन्दन किया था। दूसरी कम्युनिस्ट पार्टियों ने भी, 20वीं कांग्रेस में अंतर्निहित

संशोधनवादी रुझान को नोट किये बगैर ही ख्रुश्चेव नेतृत्व की तारीफ की थी।

महज नेतृत्व के संशोधनवादियों द्वारा हथियाने का अर्थ बुर्जुआ अधिनायकत्व की पुनर्स्थापना नहीं

अब पुनः दसवीं कांग्रेस की चर्चा पर लौटते हैं। सोवियत राज्यसत्ता के चरित्र के बारे में नौवीं कांग्रेस की रिपोर्ट में जो वक्तव्य दिया गया था, उसके साथ हमारी पार्टी का मतभेद कहां, कितना और क्यों था, अथवा आज भी है, पूरी रिपोर्ट में इस सवाल पर जो स्व-विरोधी टिप्पणियाँ की गयी थीं और उन सबके मामले में हमने जो आलोचना उन दिनों की थी, उस चर्चा को दोहराने की हम जरूरत नहीं समझते। लेकिन अगर आप नौवीं कांग्रेस रिपोर्ट के साथ दसवीं कांग्रेस रिपोर्ट की तुलना करें, तो आप पायेंगे कि वर्तमान रिपोर्ट को पूर्ववर्ती रिपोर्ट की असंगतियों व स्व-विरोधों से काफी हद तक मुक्त कर दिया गया है और माओ त्से-तुंग के भ्रान्ति पैदा करने वाले उद्धरण को भी दसवीं कांग्रेस रिपोर्ट से हटा दिया गया है। मैं इस रिपोर्ट के एक अन्य विषय पर आप का ध्यान आकर्षित करना चाहूंगा, जहां यह कहा गया है : ''उन (लिन बियाओ षड्यंत्रकारी गुट) के द्वारा अनुसरण की गयी प्रतिक्रांतिकारी संशोधनवादी लाइन का सारतत्व तथा उनके द्वारा छेड़े गये प्रतिक्रांतिकारी सशस्त्र अभ्युत्थान का मुजरिमाना मकसद पार्टी व राज्य की सर्वोच्च सत्ता को हड़पना ही था, जो पूरी तरह नौवीं कांग्रेस रिपोर्ट के साथ पूर्ण विश्वासघात है, समाजवाद की समूची ऐतिहासिक अवधि के लिए पार्टी की लाइन और नीतियों को आमूल-चूल रूप में बदल डालते हैं; मार्क्सवादी-लेनिनवादी चीनी कम्युनिस्ट पार्टी को एक संशोधनवादी, फासिस्ट पार्टी में परिवर्तित कर देते हैं, सर्वहारा अधिनायकत्व को पलट देते हैं और पूंजीवाद की पुनर्स्थापना कर देते हैं।'' हालांकि चीन के संदर्भ में ही, यह लिन बियाओ षड्यंत्रकारी गुट के बारे में कहा गया है, मगर यह उसी तर्क-युक्ति को उजागर करता है, जिसके द्वारा वे सोवियत राज्य को एक सामाजिक साम्राज्यवादी राज्य के रूप में वर्णित करते

हैं। मैंने पहले ही कहा कि इस किस्म की तर्क-युक्ति तो अति सरलीकरण के दोष से ग्रस्त है। हम इस बचकाना दलील से सहमत नहीं हो सके कि संशोधनवादियों द्वारा पार्टी व राज्य नेतृत्व हड़पना खुद अपने आप ही सिद्ध कर देता है कि वहां बुर्जुआ डिक्टेटरशिप स्थापित की जा चुकी है और पूंजीवाद की स्थापना हो चुकी है। हम नहीं सोचते कि ऐसी तर्क-युक्ति का मार्क्सवाद के साथ कोई वास्ता है। लेकिन इस पर और ज्यादा चर्चा बाद में करेंगे।

सामाजिक साम्राज्यवाद क्या है

उससे पहले मैं एक अन्य बात पर चर्चा करना चाहता हूं। यह सवाल आया है। सामाजिक साम्राज्यवाद शब्दावली का क्या अर्थ है? वस्तुतः यह क्या सूचित करता है? अगर एक समाजवादी राज्य, भले ही वह समाजवाद की बातें करता हो और कम्युनिज्म का झण्डा फहराता हो, दूषित-पतित होना जारी रखे और प्रतिक्रांतिकारी रास्ते पर चलते हुए अंततः साम्राज्यवादी बन जाये, तो उसका पारम्परिक (traditional) साम्राज्यवाद से फर्क होगा—वह फर्क क्या है? यह फर्क एक ओर समाजवादी शासन की केन्द्रीयता और दूसरी ओर, इसके (रेडिकल) नारेबाजी द्वारा उत्पन्न भ्रान्ति में निहित है—एक ऐसा भ्रम जिसे एक पारम्परिक साम्राज्यवादी देश नहीं पैदा कर सकता, क्योंकि उसके शासक पहले से ही शोषक दमनकारियों के रूप में कुख्यात हैं; इसलिए उनकी ओर से समाजवाद या कम्युनिज्म की बातें करके जन-साधारण को भ्रमित करना संभव नहीं है। सीपीसी नेतृत्व ने सामाजिक साम्राज्यवाद शब्दावली का इस्तेमाल इस चीज को स्पष्ट करने के लिए किया है। यह एक पहलू है।

दूसरे, साम्राज्यवादी देशों में अंतर्निहित निर्मम हत्याकांड के बावजूद, वहां पुरानी परम्परा के आधार पर बुर्जुआ जनतांत्रिक अधिकारों और सहवर्ती लाभों के चलन की चाहे जो भी सीमा क्यों न हो, वह एक सामाजिक साम्राज्यवादी देश में संभव नहीं है। साम्राज्यवादी दुनिया के सरगना अमेरिका जैसे देश को ही लीजिए,

जिसे बरट्रैंड रसेल जैसी एक हस्ती ने जघन्य मिलिट्री शासन व्यवस्था की संज्ञा दी है, वहां वाटरगेट घोटाले पर कितना जबरदस्त हंगामा हुआ था; पेन्टागन, सेना व समूचे राज्य के खिलाफ कितना हो-हल्ला मचा था, जिसकी वजह से जन-मत के दबाव के तहत राष्ट्रपति को पद-त्याग करना पड़ा था। लेकिन समाजवादी देश से परिवर्तित सामाजिक साम्राज्यवादी देश में इस जैसी घटना की परिकल्पना ही नहीं की जा सकती, क्योंकि वे अपने देश में और बाहर के लोगों को मार्क्सवादी शब्दाडम्बर, प्रगतिशीलता के अपने लेबल द्वारा भ्रमित व मूर्ख बना देंगे। मार्क्सवाद की दुहाई देते हुए वे यह सिद्ध करने की कोशिश करेंगे कि उनका राज्य के खिलाफ जाना तो प्रगति व जन-स्वार्थ के खिलाफ जाना है और ऐसा करते हुए, वे लोगों का क्रूरतापूर्वक दमन करने के लिए जमीन तैयार करेंगे। इसीलिए एक पूंजीवादी-साम्राज्यवादी देश तक में भी जनतांत्रिक विरोध की जो कुछ भी गुजाइंश (scope) है, वह वहां काफी कम होगी। वहां प्रगति के नाम पर कहीं ज्यादा निर्मम दमन-उत्पीड़न, कहीं ज्यादा भ्रान्ति होगी। इसी अर्थ में, यह अवश्य स्वीकार करना चाहिए कि यदि कोई समाजवादी देश एक सामाजिक साम्राज्यवादी देश में परिवर्तित हो जाये, तो जनतांत्रिक अधिकारों व नागरिक स्वतंत्रताओं पर हमले, एक पारम्परिक साम्राज्यवादी देश से हमलों की तुलना में और भी ज्यादा भीषण होंगे। इसलिए इस बात को दर-किनार करके कि क्या ऐसा मूल्यांकन सही है या गलत, यदि कोई व्यक्ति एक देश को सामाजिक साम्राज्यवादी मानता है, तो उस देश को घोर साम्राज्यवादी अमेरिका से भी ज्यादा घिनौना मानना स्वाभाविक है। जो सोवियत संघ की अमेरिका के साथ बराबरी करने में सीपीसी के तर्काधार (rationale) पर संदेह करते हैं, मैं उनसे इस पहलू से इस सवाल पर विचार करने का अनुरोध करता हूं। यहां उठाया गया एक अन्य सवाल भ्रान्ति को दर्शाता है। अगर हम मार्क्सवाद की पूरी पक्की समझदारी विकसित नहीं कर सकें और उसे निरन्तर पुख्ता नहीं कर सकें, तो ऐसी भ्रान्ति का पुनः पैदा होना अनिवार्य है। पूछा गया सवाल यह है: सभी मार्क्सवादी जानते हैं कि एक देश विशेष की विदेश-नीति उसके आर्थिक आधार का परिणाम

होती है; अब क्योंकि हम पाते हैं कि सोवियत संघ बहुत से मुद्दों पर साम्राज्यवादी अमरीका के साथ सांठ-गांठ करके आगे बढ़ रहा है, इसलिए क्या यह सोवियत राज्य के साम्राज्यवादी चरित्र का पर्याप्त सबूत नहीं है?

विषय पर इस तरीके से विचार करना निहायत गलत है। मैं पूछना चाहता हूं : क्या किसी एक कम्युनिस्ट पार्टी का नेतृत्व कभी भटक नहीं सकता या कभी गलती नहीं कर सकता? अथवा क्या किसी भी समय, किसी भी हालत में, फौरी तौर पर भी पार्टी के नेतृत्व को एजेन्ट प्रोवोकेटियर्स (agent provocateurs) द्वारा हस्तगत नहीं किया जा सकता? और यदि ऐसा हो जाए, तो क्या राज्य के समर्थन से एक ऐसे नेतृत्व को फौरन हटाया जा सकता है? और, यदि नहीं, तो क्या यह स्वाभाविक नहीं है कि नेतृत्व विदेश नीति के क्षेत्र में साम्राज्यवादियों के साथ मेलजोल रखे और साम्राज्यवादी षड्यंत्रों में शामिल हो जाये? अत: क्योंकि मार्क्सवाद दिखाता है कि विदेश नीति एक देश की घरेलू नीति का, खासकर उसके आर्थिक आधार का प्रतिफलन होती है, इसलिए क्या फौरन यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उस देश की अर्थव्यवस्था साम्राज्यवादी अर्थव्यवस्था में रूपान्तरित हो गयी है? मैं ऐसी तर्क-युक्ति को मार्क्सवाद नहीं मानता। यह तो मार्क्सवाद के नाम पर आर्थिक निश्चयतावाद है। उदाहरणस्वरूप, राज्य ढांचे, राज्य प्रणाली को ही ले लीजिए। हम सभी इस मार्क्सवादी विश्लेषण को जानते हैं कि राज्य एक विशेष आर्थिक आधार का ऊपरी ढांचा होता है। लेकिन यह भी सच है, जैसा कि लेनिन ने कहा है कि राजनीति हमेशा अर्थव्यवस्था की अग्रगामी होती है, अर्थात वर्तमान समय में, राजनीति व राजनीतिक घटनाएं आर्थिक मामलों पर जबरदस्त प्रभाव डालती हैं और निर्णायक शक्ति कारक के रूप में कार्य करती हैं।

आधार व ऊपरी ढांचे का आपसी संबंध

जैसे मान लीजिए एक समाजवादी देश का समाजवादी आर्थिक आधार ज्यों का त्यों बरकरार रहते हुए भी अगर पार्टी नेतृत्व दूषित

एवं नष्ट हो जाये तो यह समाजवादी आर्थिक आधार भी एक दिन सड़-गल जा सकता है—जब तक इस अध:पतन से इस नेतृत्व को बचाया नहीं जाता। चूंकि आर्थिक आधार सही है, इसलिए नेतृत्व भी स्वत: ठीक रहेगा—आधार और ऊपरी ढांचे के बीच संबंध या भाव व पदार्थ के बीच संबंध, जैसा कि हम एक-दूसरे पहलू से कहते हैं—ऐसा यांत्रिक नहीं है। ऐसी यांत्रिक समझदारी से लड़ने के लिए ही लेनिन ने कहा कि राजनीति अर्थव्यवस्था की अग्रगामी होती है और इसलिए सीपीसी नेतृत्व ने तर्क करना शुरू किया कि चूंकि राजनीतिक घटनाएं आर्थिक मामलों पर जबरदस्त प्रभाव डालती हैं, इसलिए ज्यों ही संशोधनवादियों ने नेतृत्व हड़पा, त्यों ही यह निष्कर्ष निकालना जरूरी था कि समाजवादी आर्थिक आधार भी एक पूंजीवादी आधार में रूपान्तरित किया जा चुका है। मैं समझता हूं कि यह भी आधार और ऊपरी ढांचे के बीच संबंध की एक यांत्रिक समझदारी को ही प्रतिफलित करता है। यद्यपि आर्थिक निश्चयतावाद से लड़ने के नाम पर चाहे जो हो, यदि आप गहराई से सोच-विचार करें तो आप समझ जायेंगे कि लेनिन की अप्रैल थीसिस (शोध प्रबंध) इसी समझदारी पर आधारित है। आर्थिक व सामाजिक पिछड़ेपन के परिप्रेक्ष्य में विचार-विश्लेषण करने पर रूसी क्रांति को बुर्जुआ जनवादी क्रांति के रूप में वर्णित करना पड़ता। मगर क्रांति का स्तर निर्धारित करने के क्षेत्र में राज्य के वर्ग-चरित्र को ही लेनिन ने हमेशा प्रधान व निर्णायक कारक के रूप में माना न कि आर्थिक पिछड़ेपन या अन्य किसी चीज को।

सिर्फ इतना ही नहीं, बल्कि राज्य ने राष्ट्रीय सम्प्रभुता सम्पन्न पूंजीवादी राज्य का चरित्र ग्रहण कर लिया है या नहीं—इस सवाल की जांच-पड़ताल करने में, लेनिन ने उस देश की एक साम्राज्यवादी देश पर आर्थिक निर्भरता को तनिक भी महत्वपूर्ण नहीं माना। इस मुद्दे पर काऊत्स्की व रोजा लक्जमबर्ग के बीच विवाद में लेनिन के विचारों को हम जानते हैं, जिसकी उन्होंने अपनी पुस्तक 'राष्ट्रों के आत्मनिर्णय के अधिकार' में चर्चा की, और जिन पर हमारी पार्टी में बहुत चर्चाएं की जा चुकी हैं। यदि इन सिद्धांतों (theories) को सही तरीके से समझ लिया जाये तो यह समझने में कोई

कठिनाई नहीं होगी कि सत्ता के हस्तांतरण के बाद भी कुछ समय तक भारतीय अर्थव्यवस्था में सामन्तवाद के कुछ अवशेषों के बावजूद–और उसी अर्थ में, क्रांति आर्थिक रूप से अभी तक जनतांत्रिक क्रांति के स्तर में होने के बावजूद–हम क्यों इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि भारतीय क्रांति तभी से समाजवादी क्रांति के स्तर में है। सत्ता के हस्तांतरण के ठीक उस समय हमने कहा था कि स्वाधीनता प्राप्ति के माध्यम से राज्य बुर्जुआ वर्ग का राज्य बन गया है, **उस अर्थ में और उस सीमा तक** भारतीय क्रांति पूंजीवाद-विरोधी समाजवादी क्रांति के स्तर में प्रवेश कर गयी। और अब तो अर्थव्यवस्था में सामन्तवाद के कोई लेशमात्र भी अवशेष नहीं बचे हैं–राष्ट्रीय नेतृत्व द्वारा समझौते की वजह से जो कुछ भी शेष बचा है, वह तो सांस्कृतिक क्षेत्र में पुराने समाज के अवशेष के रूप में ही विद्यमान है।

यद्यपि यह मूल सिद्धांत सामान्य रूप से सही है कि एक देश की विदेश नीति तो उसके आधार का प्रतिफलन होती है, मगर, तमाम पहलुओं से विशेष स्थिति की जांच-परख द्वारा ही उसकी विशेष समझदारी हासिल करना और निष्कर्ष निकालना जरूरी है।

सोवियत नेतृत्व अमेरिका के साथ सांठ-गांठ करके चल रहा है

कुछ समय पहले, हमारी पार्टी के अंग्रेजी मुख पत्र प्रोलिटेरियन एरा में ब्रेजनेव-निक्सन बैठक पर एक लेख प्रकाशित किया गया था। इस लेख में हमने चर्चा की थी कि सोवियत संघ का संशोधनवादी नेतृत्व अपने प्रभाव क्षेत्र को विस्तृत करने के प्रयास में अमेरिका के साथ गाढ़ी दोस्ती कर रहा है। यों कहिए कि वह विश्लेषण अरब-इज़राइल टकराव के बाद की घटनाओं के माध्यम से भविष्यवाणी की तरह सिद्ध हुआ है। इन घटनाओं के दौरान भी, हमारी पार्टी की केन्द्रीय कमेटी की तरफ से एक वक्तव्य जारी किया गया था, जो चीनी स्टैंड से कहीं ज्यादा सुस्पष्ट था। यद्यपि सीपीसी ने इतनी बारीकी से विश्लेषण नहीं किया, जितनी बारीकी से हमारी पार्टी ने किया था, मगर सोवियत संघ की उनकी आलोचना

का स्वरूप व अभिप्राय कमो-बेश हमारी चर्चा जैसा ही था। सिर्फ फर्क यह रहा है कि जहां सीपीसी ने आलोचना करते समय सामान्य रूप में सोवियत संघ का ही उल्लेख किया है, वहां हमने सीपीसी से भिन्न हरेक मुद्दे पर सोवियत संघ के संशोधनवादी नेतृत्व का उल्लेख किया एवं हवाला दिया है, क्योंकि अभी तक हम असंदिग्ध रूप से यह निष्कर्ष नहीं निकाल पाये हैं कि सोवियत राज्य एक सामाजिक साम्राज्यवादी राज्य में परिणत या पतित कर हो गया है। मगर जब हमने सोवियत संशोधनवादी नेतृत्व की कड़ी निन्दा और आलोचना की है, वहीं साथ-साथ हमने सोवियत संघ के और समूची दुनिया के लोगों से भी अपील की कि वे भूमण्ल में सर्वप्रथम समाजवादी राज्य को बचाने के लिए आगे आयें। जिस तरीके से संशोधनवादी सोवियत नेतृत्व अब अन्तर्राष्ट्रीय एकाधिकारी पूंजी को, उनके कारपोरेट घरानों को अपने आफिस व एजेंसियां खोलने की अनुमति दे रहा है; जिस तरह वहां पूंजीवादी रुझान बढ़ रहा है, सट्टेबाजी बढ़ रही है, पण्य-संचालन का दायरा और छोटे पैमाने पर उत्पादन का दायरा बढ़ रहा है, मुनाफा आधारित प्रोत्साहन अधिकाधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है—इन सब पर चिन्ता प्रकट करते हुए हमने चेतावनी के साथ सावधान किया है कि जब तक इन प्रवृत्तियों और रुझानों को रोका नहीं जाता है, लेनिन व स्तालिन द्वारा संस्थापित व पोषित राज्य ही खतरे में पड़ जायेगा और समाजवादी उत्पादन संबंध की जगह पूंजीवादी उत्पादन संबंध स्थापित हो जायेगा। इसलिए हमने विश्व के, खासकर सोवियत संघ के, लोगों से अपील की है कि भूमण्डल पर सर्वप्रथम इस समाजवादी राज्य को बचाने के लिए आगे आयें।

मजदूर वर्ग के दो औजार—पार्टी और राजसत्ता

यहां मैं लेनिन के कुछ महत्वपूर्ण विश्लेषण आपको याद कराना चाहता हूं। जब लेनिन ने यह कहा तो उन्होंने एक चीज को साफ तौर पर जोर देकर दिखाया : यह याद रखना जरूरी है कि क्रांति से पहले मजदूर वर्ग सिर्फ एक औजार अर्थात अपनी पार्टी को इस्तेमाल करता है—और, मैं यह भी जोड़ता हूं कि यह

पार्टी भी अधिकांश मामलों में निहत्थी होती है—मगर क्रांति के बाद वह दो औजारों—पार्टी व राजसत्ता का इस्तेमाल करता है। लेनिन ने जो अलग-अलग व साफ तौर पर इन दो औजारों का उल्लेख किया है—उसका एक तात्पर्य है। बात यह नहीं है कि ज्यों ही एक पार्टी नेतृत्व पतित एवं दूषित हो जाये, तो दूसरा अवयव या औजार भी अपने आप भ्रष्ट एवं दूषित हो जाता है। अब, इस मुद्दे पर एक दफा कम्युनिस्टों के बीच एक विवाद पैदा हुआ; सिर्फ एक देश में सर्वहारा एकनायकत्व स्थापित हो जाने के कारण, क्या यह कहा जा सकता है कि पार्टी का एकनायकत्व भी वहां स्थापित हो गया है। विपरीत क्रम में, क्या यह कहना सही है कि सर्वहारा एकनायकत्व तभी स्थापित हो जाता है, ज्यों ही पार्टी का एकनायकत्व स्थापित हो जाता है। लेनिन ने कहा कि अगर सर्वहारा एकनायकत्व वस्तुतः स्थापित हो जाये, अर्थात अगर वर्ग के रूप में मजदूर वर्ग राजसत्ता में आ जाये, तब यह भी मानना होगा कि पार्टी-एकनायकत्व भी वहां स्थापित हो चुका है, क्योंकि सर्वहारा वर्ग तो सिर्फ पार्टी के माध्यम से ही काम कर सकता है। मगर, यदि सर्वहारा वर्ग-एकनायकत्व पार्टी की स्थापना के माध्यम से वस्तुतः स्थापित किया जा चुका है, तो यह समझने के लिए जांच-पड़ताल करनी होगी कि क्या वर्ग के रूप में मजदूर वर्ग वास्तविक रूप में राज्य-सत्ता हासिल कर सका है या नहीं।

हमें लगता है कि माओ त्से-तुंग ने लेनिन के इस दूसरे वक्तव्य को गलत ढंग से समझकर एक तर्क पेश किया है, भले ही उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा हो या नहीं। चूंकि लेनिन ने कहा है कि पार्टी एकनायकत्व कायम होने पर भी हमेशा अपने आप यह बात नहीं कही जा सकती कि सर्वहारा एकनायकत्व कायम हो गया है, इसलिए यदि किसी पार्टी द्वारा राज-सत्ता हथियाने के बाद उसका नेतृत्व एक समय आकर संशोधनवादी नेतृत्व में तब्दील हो जाये तो फौरन उसी तर्क से तो यह कहा जा सकता है वहां सर्वहारा एकनायकत्व कायम नहीं हो सका है। मैं इस मुद्दे को इतना आसान नहीं मानता हूं।

मेरा सवाल है : लेनिन ने उन दो औजारों के बीच स्पष्ट रूप में फर्क क्यों किया, जो सर्वहारा वर्ग क्रांति के बाद इस्तेमाल करता है? इसका निहितार्थ क्या है? हालांकि इन दोनों औजारों के कार्य (functions) न सिर्फ अंत:सम्बंधित हैं, बल्कि काफी हद तक अंत:निर्भर भी हैं; मगर मैं मानता हूं कि दोनों की अलग-अलग सत्ता (entity) है और कुछ सापेक्ष स्वाधीनता भी है। अगर बात ऐसी है, तो घटनाओं का विश्लेषण किए बगैर यह कैसे कहा जा सकता है कि ज्यों ही दोनों में से कोई एक औजार दूषित व भ्रष्ट हो जाये, तो दूसरा भी स्वत: भ्रष्ट एवं दूषित हो जाता है? मजदूर वर्ग ने बहुत से संघर्षों में अपना खून-पसीना बहाकर जिस औजार को तैयार किया है, क्या वह इसे इतनी आसानी से और बगैर किसी प्रतिरोध के यों ही भ्रष्ट-पतित हो जाने देगा? यदि पार्टी नेतृत्व संशोधनवादी हो जाये तो निश्चित रूप से जबरदस्त नुकसान हो जायेगा, लेकिन बात ऐसी नहीं है कि पार्टी एकदम तुरन्त पूरी तरह ही पतित-दूषित हो जाती है। दोनों औजारों के बीच अंतर करने का तात्पर्य यहीं पर निहित है जिसे मैं नहीं सोचता कि अपनी विराट क्षमता रहने के बावजूद, माओ त्से-तुंग समझने में समर्थ हुए थे। मैं सोचता हूं कि लेनिन की शोध-प्रस्थापना (thesis) की यह समझदारी गलत है कि इन दोनों में कोई-सा एक औजार ज्यों ही भ्रष्ट एवं दूषित हो जाये, तो दूसरा भी खुद ही भ्रष्ट एवं दूषित हो जायेगा। वरना उन्हें एक सवाल का जवाब देना होगा—यदि हम सही हैं कि राज्य भी एकदम दूषित-पतित हो जाता है, ज्यों ही संशोधनवादी पार्टी नेतृत्व को हड़प लेते हैं—तो सीपीसी ने यह निष्कर्ष क्यों नहीं निकाला कि सोवियत राज्य उसी रोज एक पूंजीवादी राज्य में तब्दील हो गया, जब उन्होंने ख्रुश्चेव नेतृत्व को संशोधनवादी के रूप में वर्णित किया था? इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए उन्होंने इतना समय क्यों लिया? बात ऐसी नहीं है कि जिस क्षण कोई व्यक्ति एक वर्ग द्रोही (renegade) बनता है तो उसी क्षण वह पतित होना, भटकना भी शुरू करता है। इसे दिखाने एवं सिद्ध करने के

लिए विश्व साम्यवादी आन्दोलन का इतिहास ऐसे दृष्टांतों से भरा पड़ा है। मैं इस पर ज्यादा चर्चा में नहीं जाना चाहता हूं।

यह कैसे जांच-पड़ताल करें कि सोवियत राज्य एक सामाजिक-साम्राज्यवादी राज्य में परिणत हो गया है या नहीं

एक सवाल पूछा गया है : वे कौन-सी लाक्षणिक विशेषताएं हैं, जो यह साबित करें कि एक समाजवादी राज्य भटकते-भटकते एक पूंजीवादी राज्य में तब्दील हो गया है? इस सवाल पर पूर्ण रूप से चर्चा के लिए बहुत ज्यादा समय की जरूरत है, जो अब मेरे पास नहीं है। आप को अवश्य याद होगा कि नौवीं कांग्रेस रिपोर्ट पर चर्चा करते वक्त, मैंने इस सवाल से सम्बंधित कई एक मूलभूत मुद्दे उठाये थे। उन्हीं मूलभूत पहलुओं को ध्यान में रखते हुए, आप को यह बात समझनी होगी। उस समय मैंने कहा था कि इस तरह निष्कर्ष निकालने के लिए, यह दिखाना जरूरी है कि सोवियत संघ में उत्पादन के उद्देश्य, उत्पादन की व्यवस्था और उत्पादन संबंध में मूलभूत परिवर्तन आ चुका है और यह कि समाजवादी उत्पादन के उद्देश्य एवं समाजवादी उत्पादन संबंध की जगह पूंजीवादी उत्पादन संबंध व उत्पादन का उद्देश्य पुनर्स्थापित हो गया है। इसने अर्थव्यवस्था को ही बुनियादी तौर पर बदल डाला है। चूंकि इसके बारे में पुनः प्रश्न उठाया गया है, इसलिए मुझे इस पर संक्षेप में चर्चा करने की जरूरत है।

मैं समझता हूं कि इस मुद्दे पर विभिन्न पहलुओं से सोच-विचार करने की जरूरत है। पहले, यह गौर करना जरूरी है कि उनकी गतिविधियां, उनकी राजनीतिक गतिविधियां किधर उन्मुख हैं अर्थात संचालित हैं? यद्यपि वे विभिन्न क्षेत्रों में साम्राज्यवादियों के साथ सांठ-गांठ करके चल रहे हैं, फिर भी उनका साम्राज्यवादियों के साथ कोई द्वन्द्व है कि नहीं अर्थात वे स्वतंत्रता संग्राम, मुक्ति युद्ध के सवाल पर, चाहे कुछ सीमा में ही सही, एक साम्राज्यवाद-विरोधी भूमिका निभाते हैं कि नहीं? क्या वे हर क्षेत्र में हमेशा साम्राज्यवादियों के साथ सांठ-गांठ कर चलते हैं या ऐसे रुझान के बावजूद उनके बीच एक द्वन्द्व भी काम कर रहा है? उदाहरण के लिए वियतनाम,

खासकर उत्तर वियतनाम को ही लीजिए जो अमेरिकी साम्राज्यवाद के विरुद्ध एक वीरतापूर्ण संग्राम चला रहा है। कुदरतन, उन्हें साम्राज्यवादियों के अंदर तो कोई मित्र ही नहीं मिल सका। यह एक पहलू है। इसके अलावा, जहां तक अब हम देख सकते हैं, संशोधनवाद के खिलाफ संघर्ष में चीन वियतनाम के पक्ष में है और सोवियत संघ के खिलाफ है। मगर विभिन्न वैचारिक सवालों पर सोवियत संघ की आलोचना करते समय, वे उसे एक मित्र के रूप में देखने के इच्छुक हैं। इसका क्या कारण है? इस पर सोच-विचार किया जाना चाहिए। उन्हें अमेरिकी साम्राज्यवाद के हाथों कष्टों का जबरदस्त प्रत्यक्ष तजुर्बा है। लेकिन देखिए कि अमेरिकी कठपुतली लोन-नोल* को सोवियत संघ की मान्यता के बावजूद, वे फिर भी अमेरिकी साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष में सोवियत संघ को एक मित्र के रूप में मान्यता देते हैं और इस बात पर उनका चीन के साथ वैचारिक मतभेद है। हो ची मिन्ह की मृत्यु से पहले उनकी केन्द्रीय कमेटी के एक दस्तावेज में उनके द्वारा अख्तियार किये गये रुख में मैंने यही आशय पाया। यह बिल्कुल सही है कि वे सोवियत संशोधनवाद के खिलाफ हैं, लेकिन वे सोवियत संघ के बारे में सीपीसी के मूल्यांकन से सहमत भी नहीं हो सके हैं। यह एक बिल्कुल अलग बात है कि सोवियत संघ और अमेरिकी साम्राज्यवाद के बीच द्वन्द्व से क्या लाभ हो रहा है? लेकिन इस पर ध्यान देना चाहिए कि वहां द्वन्द्व अवश्य है।

दूसरे, यह सुनिश्चित करना जरूरी है कि सोवियत संघ में उत्पादन संबंध पूरी तरह बदल गया है या नहीं अर्थात वहां समाजवादी उत्पादन संबंध की जगह पूंजीवादी उत्पादन संबंध पुनर्स्थापित किया जा चुका है कि नहीं। और ज्यादा स्पष्ट रूप से कहें, तो कहना होगा कि क्या उत्पादन-साधनों पर सामाजिक मालिकाने पर आधारित उत्पादन संबंध को पूरी तरह बदल दिया गया है या नहीं। इस संदर्भ में, मैं एक या दो बातों पर और चर्चा करना चाहता हूं, अन्यथा इस समस्या

* लोन-नोल के नेतृत्व में कम्पूचिया में अमेरिकी कठपुतली सरकार

को समझने की कोशिश करते समय भ्रान्ति पैदा हो सकती है। हमारे लिए यह समझना जरूरी है कि एक पूंजीवादी राज्य में उद्योगों के राष्ट्रीयकरण का अर्थ सामाजिक मालिकाना कायम होना नहीं है। पूंजीवादी व्यवस्था में चाहे उद्योगों का राष्ट्रीयकरण कर भी दिया जाये, मगर फिर भी उत्पादन का उद्देश्य अत्यधिक मुनाफा अर्जित करना ही रहता है; मालिक-मजदूर संबंध में कोई परिवर्तन नहीं होता अर्थात शोषण व उत्पीड़न जारी रहते हैं। सिर्फ यही परिवर्तन होता है कि किसी व्यक्ति की बजाए, राजसत्ता ही मालिक बन जाती है। इसके अलावा, पूंजीवादी व समाजवादी व्यवस्थाओं में एक मजदूर की मजदूरी निर्धारित करने की कसौटियां (norms) एक समान नहीं होतीं। पूंजीवादी व्यवस्था में मजदूर को न्याससंगत वेतन कभी नहीं मिलता–उसे अपने श्रम के जायज मूल्य, न्यायसंगत वेतन से हमेशा वंचित किया जाता है। उत्पादन का उद्देश्य सामाजिक होने के कारण, जिस तरीके से एक समाजवादी देश में मजदूर का वेतन निश्चित किया जाता है, उस तरीके से एक पूंजीवादी देश में नहीं किया जा सकता है, क्योंकि वहां अधिकतम मुनाफा कमाने के लिए ही उत्पादन किया जाता है।

अर्थशास्त्र से अवगत हरेक व्यक्ति जानता है कि उत्पाद में ही श्रम-शक्ति सम्मिलित होने की वजह से उसे न अलग किया जा सकता है और न ही उसे मापा जा सकता है। प्राकृतिक न्याय के आधार पर वेतन निर्धारित करने का तरीका समाज में सर्जित (created) है : अतिरिक्त मूल्य (surplus value) से उस अंश को घटाने के बाद, जिसकी समाज और लोगों की समस्त आर्थिक प्रगति, सांस्कृतिक उन्नति और ऐसी अन्य आवश्यकताओं के लिए जरूरत होती है, अर्थात मजदूरों की प्रगति के लिए उनके हित में खर्च करने के लिए जिस अंश की जरूरत होती है, उसको छोड़कर शेष बची हुई राशि को मजदूरों के वेतन पर खर्च किया जाना चाहिए। यह एक पहलू है। दूसरे, व्यक्तिगत रूप में हरेक मजदूर को कितना वेतन मिलेगा–इसे हरेक को उसकी योग्यता के अनुसार मूल नीति के आधार पर निर्धारित किया जाना चाहिए। और चूंकि समाजवादी व्यवस्था व्यक्तिगत व संस्थागत सम्पत्ति हस्तगतकरण से मुक्त है, इस प्रक्रिया के माध्यम से एक मजदूर जो लाभ प्राप्त करता है, इस प्रक्रिया के

माध्यम से एक मजदूर का वेतन निर्धारित करने के इस सिद्धांत को एक पूंजीवादी देश में लागू नहीं किया जा सकता, क्योंकि अतिरिक्त मूल्य का एक बड़ा हिस्सा मालिकों के मुनाफे के रूप में चला जाता है। हालांकि वहां व्यक्ति की बजाय राजसत्ता मालिक बन जाती है, मगर इसमें कोई परिवर्तन नहीं आता। यह स्पष्ट है कि राज्य पूंजी उद्योगों के राष्ट्रीयकरण की इसी प्रक्रिया के माध्यम से पैदा होती है और यही राज्य पूंजी, विशेष रूप से राज्य एकाधिकारी पूंजी ही फासीवाद की आर्थिक मजबूत आधार-शिला के रूप में कार्य करती है। इसके अलावा, एक पूंजीवादी देश में उद्योग के विकास, 'देश' की प्रगति, सड़कों व दूरसंचार आदि के सुधार एवं उन्नति के लिए खर्च किए जाने वाले अतिरिक्त मूल्य का एक बड़ा हिस्सा अफसरशाहों की जेबों में चला जाता है और लोग इस तरीके से भी वंचित किये जाते हैं।

इसलिए यह निष्कर्ष निकालने के लिए कि सोवियत संघ की अर्थव्यवस्था पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में तब्दील हो गयी है, यह दिखाना जरूरी है कि वहां समाजीकृत उद्योग इतने ज्यादा रूपान्तरित कर दिये गये हैं कि उन उद्योगों ने पूंजीवादी व्यवस्था में राष्ट्रीयकृत उद्योगों की विशिष्टताएं अर्जित कर ली हैं, जो राज्य पूंजी को जन्म देते हैं। सिर्फ इतना कहना ही काफी नहीं है कि वहां सट्टेबाजी और पण्य का परिचालन बढ़ रहा है और मुनाफा उत्प्रेरक एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है; इन सब चीजों को उपयुक्त प्रासंगिक आंकड़ों के साथ साबित करना जरूरी है। यदि कोई ऐसे निर्णायक प्रामाणिक आंकड़े मुहैया करा दे, तो हम आभारी होंगे। लेकिन उससे पहले, यह अन्तिम रूप से नहीं कहा जा सकता कि सोवियत राज्य एक सामाजिक साम्राज्यवादी राज्य में इसलिए तब्दील हो गया है, क्योंकि वहां संशोधनवादियों ने पार्टी व राजसत्ता का नेतृत्व हड़प लिया है।

लिन बियाओ का मुख्य सरोकार तो सत्ता हड़पना था

अब मैं लिन बियाओ के बारे में कुछ बातें कहूंगा। हमने उन्हें नौवीं कांग्रेस में किस हैसियत से देखा है? वह न सिर्फ पार्टी के वायस-चेयरमैन हैं, बल्कि इस कांग्रेस में रिपोर्ट भी

पेश कर रहे हैं, माओ त्से-तुंग के एक घनिष्ठ सहयोद्धा हैं और माओ के उत्तराधिकारी के रूप में भी समझे जा रहे हैं। नौवीं कांग्रेस की रिपोर्ट पर चर्चा के दौरान, उस रिपोर्ट और कुछ प्रासंगिक घटनाओं का अध्ययन करके हमने उनके बारे में जो धारणा (impression) बनायी थी, उसकी भी स्पष्ट व्याख्या की थी। मैंने कहा था कि लिन बियाओ अगर सीपीसी के सिद्धांतकार नेता के रूप में उत्तराधिकारी बने और यदि पार्टी का नेतृत्व व सत्ता उन्हें सौंपी गयी, तो यह कहना पड़ेगा कि सीपीसी का भविष्य निराशाजनक एवं अंधकारमय है। यह धारणा बनाने के बारे में मैंने सम्बद्ध कारणों की भी विस्तार से चर्चा की थी। मैंने कहा था कि लिन बियाओ के लिए राजनीतिक लाइन का सवाल महत्वपूर्ण नहीं है, बल्कि उनकी मुख्य दिलचस्पी पार्टी और राज्य की सत्ता हड़पना है। उन्होंने बार-बार ''माओ त्से-तुंग जिन्दाबाद'' के नारे उछालते हुए और माओ के उद्धरणों का राग अलापते हुए, यह कार्य करना चाहा। मैंने दिखाया था कि वह चाटुकारिता के किस स्तर तक गिर गये थे। अब ध्यान से देखिए कि दसवीं कांग्रेस रिपोर्ट में उनके बारे में चाऊ एन लाई ने क्या कहा है : ''लिन बियाओ और उनके चन्द मुट्ठीभर वफादार दुमछल्लों का गुट, एक ऐसा प्रतिक्रांतिकारी षड्यंत्रकारियों का गुट था, जो हाथ में 'उद्धरणों' की प्रति लिए बिना नहीं दिखाई देते थे और हमेशा मुंह खोलते ही 'जिन्दाबाद' का नारा लगाते थे। और आप के सामने चिकनी-चुपड़ी बातें करते लेकिन पीठ पीछे छुरा घोंपते थे।''

कहने की जरूरत नहीं है कि नौवीं कांग्रेस के समय लिन बियाओ का उन्होंने ऐसा चरित्र-चित्रण नहीं किया था। यद्यपि हमारे पास उपयुक्त आंकड़े एवं प्रमाण नहीं थे, लेकिन फिर भी महज सम्भाव्यता के तर्क-विज्ञान पर अपने को आधारित करके हमने कहा था कि यह हो सकता है कि लिन बियाओ ने खुद माओ को ही वास्तव में नजरबन्द कर रखा हो? और यह प्रतीत होता है कि सत्ता हड़पने के लिए रास्ता तैयार करने हेतु ही माओ का स्तुतिगान करना उनका एक फरेब था।

मैंने कहा था कि शायद लिन बियाओ षड्यंत्रकारी गुट ने अपने हाथों में ऐसी शक्तियां संकेन्द्रित कर ली हों कि माओ इसके बारे में कुछ कर ही न सकते हों, यद्यपि वे इस कांग्रेस में उपस्थित थे। यद्यपि दसवीं कांग्रेस में उल्लेख किया गया है कि माओ ने लिन बियाओ की कमियों एवं गलतियों की आलोचना की थी, उन्हें हिदायत के साथ चेतावनी दी थी और उसे सही रास्ते पर लाने की कोशिश भी की थी, मगर कुदरतन एक सवाल उठता है: जिस व्यक्ति की ईमानदारी पर शक हो तो ऐसे व्यक्ति को कांग्रेस में रिपोर्ट पेश करने का अवसर कैसे मिल सका? जो पार्टी की राजनीतिक लाइन का ही विरोधी हो, क्या उसे कांग्रेस में रिपोर्ट पढ़ कर सुनाने की अनुमति दी जा सकती है? या वास्तविकता ऐसी थी कि हालांकि माओ को यह आशंका थी, मगर वह कार्यवाही करने में वस्तुत: समर्थ नहीं थे? इन बातों पर अवश्य ही गहन विचार होना चाहिए। अंतत: इस दफा दसवीं कांग्रेस में अब लिन बियाओ के विरुद्ध स्पष्ट आरोप लगाया गया है कि उन्होंने न सिर्फ पार्टी व राज्य की सम्पूर्ण सत्ता हड़पने का प्रयास किया बल्कि माओ का कत्ल करने की भी साजिश रची, जिस साजिश को अंतत: विफल कर दिया गया।

प्रसंगवश, साथ-साथ देखें कि नौवीं कांग्रेस रिपोर्ट किस तरह तैयार की गयी थी और दसवीं कांग्रेस रिपोर्ट इसके बारे में क्या कहती है। यह कहा गया है कि शुरू में चेन पो ता और लिन बियाओ, दोनों ने संयुक्त रूप में एक रिपोर्ट का प्रारूप तैयार किया था, जिसे केन्द्रीय कमेटी ने नामन्जूर कर दिया था। तदन्तर माओ के निर्देशन में यह रिपोर्ट तैयार की गयी। लेकिन इसके बारे में कुछ भी नहीं कहा गया है कि उस रिपोर्ट का प्रारूप किसने तैयार किया और लिन बियाओ या उसके किसी व्यक्ति का इसमें कोई हाथ था या नहीं। यह नोट करना जरूरी है कि केन्द्रीय कमेटी में चेन पो ता ने इस रिपोर्ट का विरोध किया था लेकिन लिन बियाओ ने ऐसा कुछ नहीं किया। मेरा सवाल तो यह है कि दसवीं कांग्रेस रिपोर्ट में उल्लिखित इस अल्प संरचना के आधार पर हम नहीं कह सकते कि इस नौवीं कांग्रेस रिपोर्ट को तैयार करने में लिन

बियाओ का कोई हाथ था ही नहीं। यदि इसमें उनका हाथ था, तो इस मौके का लाभ उठाकर, उन्होंने माओ की थोथी तारीफें शामिल कर दी हों और उसी समय उन्होंने अपने-आप को माओ के शिष्य, वारिस एवं उत्तराधिकारी के रूप में वर्णित करा लिया हो। माओ चाहे जिस सीमा तक लिन बियाओ की नीयत को पहचान गये प्रतीत होते हैं, मगर वे तब तक उन्हें पार्टी कांग्रेस में रिपोर्ट को पेश करने की इजाजत नहीं दे सकते थे, जब तक स्थिति ऐसी न हो गयी हो कि लिन बियाओ ने पहले ही पार्टी पर अंदर से पूरा नियंत्रण स्थापित कर लिया हो। अत: यह भी हो सकता है कि हालांकि वे लिन बियाओ का विरोध करने की जरूरत तो महसूस करते थे, मगर माओ ने इसलिए ऐसा न किया हो, क्योंकि यह विरोध उन्हें खुद ही करना पड़ता और उन्होंने अपने-आप को शामिल करना उचित न समझा हो। सही समय पर प्रहार करने के पहले शायद उन्हें अपनी शक्ति एवं स्थिति (power and position) को सुदृढ़ करने के लिए कुछ समय की जरूरत थी। उन्होंने इस तरह ही सोचा हो। अर्थात लिन बियाओ जैसा एवं जो कुछ भी था, इसके बावजूद वह चूंकि माओ-लाइन का प्रचार करता रहा था, इसलिए माओ के लिए फिलहाल, चाऊ एन लाई व ऐसे ही अन्य लोगों के हाथ मजबूत करना ही बुद्धिमानी की बात थी। और, ठीक हुआ भी यही। जब केन्द्रीय कमेटी एवं प्रथम व द्वितीय प्लेनरी अधिवेशनों में लिन बियाओ षड्यंत्रकारी गुट ने चीन के प्रेसिडेन्ट के रूप में लिऊ शाओची के नाम की जगह उनके नाम का प्रस्ताव रखा, तो माओ त्से-तुंग ने इसका प्रत्यक्ष रूप से विरोध किया। अत: लिन बियाओ शंकित हो गया, उन्होंने समझ लिया कि उनके लिए माओ के जीते जी प्रेसिडेन्ट बनना असम्भव है। अगर अब उन्होंने माओ का विरोध किया तो उनके ही अनुयायी उन्हें इसलिए झिड़केंगे, क्योंकि वे खुद को माओ के दाहिने हाथ, माओ के चिंतन के पक्षधर के रूप में अपने आप को प्रचारित करते आये हैं। वे माओ की ऑथोरिटी को चुनौती नहीं दे सकते जिसने ऐसी मुसीबतों में भी पार्टी की रक्षा करने में मदद की थी। अत: माओ की हत्या की साजिश करते हुए भी उन्हें माओ के नाम का

राग अलापना जारी रखना पड़ा, जैसा कि दसवीं कांग्रेस रिपोर्ट में उजागर किया गया है।

चिंतन के यंत्रीकरण के विरुद्ध संघर्ष जरूरी

प्रसंगवश, मैं एक अन्य पहलू पर आप का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं। अपनी पार्टी के जन्म से ही हम विश्व साम्यवादी आन्दोलन में गुरुवाद (authoritarianism) तथा चिंतन के यंत्रीकरण के रुझान के खिलाफ लड़ते आ रहे हैं। मान लीजिए कि एक क्रांतिकारी पार्टी में ऐसा कोई नेता जो अतीत में एक सच्चा क्रांतिकारी नेता था, चाहे वह अग्रणी पंक्ति का ही नेता क्यों न हो, लेकिन अब पतित हो गया है एवं पार्टी विरोधी हो गया है, तो ऐसी परिघटना के प्रति हमारा क्या नजरिया होना चाहिए? नौवीं कांग्रेस रिपोर्ट और विशेष रूप से लिऊ शाओची के मामले पर चर्चा के दौरान, मैंने इस सवाल पर विभिन्न पहलुओं से विचार-विश्लेषण किया था। अत: उसे दोहराने की यहां कोई जरूरत नहीं है। मगर जरूरी बात तो यह है कि जब कभी हम ऐसी परिघटना की जांच-परख करते हैं, लिऊ शाओची या लिन बियाओ–चाहे कोई भी व्यक्ति उसमें लिप्त क्यों न हो–यदि हम यांत्रिक अवधारणा से ग्रस्त हैं या भावुकता एवं आवेग से प्रभावित हो गये हैं तब खतरा यह होता है कि आलोचना का मूल उद्देश्य ही व्यर्थ हो जाता है। क्या कोई व्यक्ति शुरू से ही गद्दार था? या शुरू में ही क्रांतिकारी होने के बावजूद वह बाद में जीवन के सभी पहलुओं को समेटते हुए संघर्ष संचालित करने में विफल होने के कारण या अन्य किसी वजह से गुमराह हो गया, भटक गया–इन सब बातों को सही ढंग से समझने के लिए नेतृत्व के पास अक्लमन्दी और पार्टी के अंदर कार्य-शैली या पद्धति के बारे में एक स्पष्ट अवधारणा रहनी चाहिए। अर्थात उसे सिर्फ रिपोर्ट के आधार पर ही कार्रवाई नहीं करनी चाहिए। जब नेतृत्व संभाव्यता के तर्क-विज्ञान की सही समझदारी हासिल कर सके और उसे सही तरीके से लागू कर सके तो बहुत से खतरों को टाला जा सकता है या कम से कम इसकी गुंजाइश तो रहती ही है। अत: संघर्षों के संचालन में मार्क्सवाद

के विज्ञान पर आधारित इस खास योगदान को नेतृत्व द्वारा हासिल करने का सवाल और ज्ञान जगत के (epistemology) के विभिन्न पहलुओं के बारे में वैज्ञानिक अवधारणा विकसित करने का सवाल बहुत जरूरी है। कहने की जरूरत नहीं कि चिंतन के यंत्रीकरण के प्रभाव से मुक्त होना होगा, जो विश्व साम्यवादी आन्दोलन को बहुत ज्यादा नुकसान पहुंचा चुका है–ऐसी खास योग्यता अर्जित करना पूर्व शर्त है।

इसके साथ-साथ किसी को भी सिद्धांत के आधार पर संघर्ष की अर्थात मूल सिद्धांतों पर समझौता न करने की अनिवार्यता को भी नहीं भूलना चाहिए। जब 12-**पार्टी घोषणा** का प्रारूप तैयार किया गया, तब सीपीसी की ओर से खुद माओ त्से-तुंग उपस्थित थे। आप यह भी जानते हैं कि जिस समय 81-**पार्टी वक्तव्य** का प्रारूप तैयार किया गया, तब सीपीसी का प्रतिनिधित्व लिऊ शाओची ने किया था। फिर भी उन दोनों दस्तावेजों में उसूलों (principles) और विचारधारा (ideology) पर समझौते (compromises) प्रतिफलित हुए थे। आप को मालूम ही है कि हमने उसूल के उन मामलों पर ऐसे समझौतों की आलोचना की थी। हमारी पार्टी लम्बे अरसे से इन सवालों को जोरदार ढंग से प्रस्तुत करने की कोशिश करती आ रही है।

एक गंभीर सैद्धांतिक गलती

कॉमरेड्स, दसवीं कांग्रेस रिपोर्ट में एक ऐसी गंभीर गलती है, जो मेरे ध्यान से बच नहीं सकी। इसलिए आप में से बहुत से कॉमरेडों ने सवाल उठाये और इतनी चर्चा भी की, मगर आप में से किसी ने भी इसका जिक्र तक नहीं किया। मैं बहुत गंभीरता से आप से पूछना चाहता हूं: आप एक ऐसी प्रकृति के दस्तावेज का अध्ययन किस तरह करते हैं? क्या आप इसका अध्ययन आलोचनात्मक ढंग से ध्यान की पूरी एकाग्रता के साथ करते हैं? ऐसे महत्वपूर्ण दस्तावेजों का अध्ययन असावधानीपूर्वक सरसरी नजर से नहीं किया जाना चाहिए। बहरहाल, इस गंभीर त्रुटि की प्रकृति को दिखाने हेतु इस रिपोर्ट से वह अंश पढ़ कर सुनाने से पहले

जिन वक्तव्यों के माध्यम से यह त्रुटि उद्घाटित हुई है, चाहे संक्षेप में ही सही, इस मुद्दे के बारे में कुछ कहना जरूरी है।

नयी जनवादी क्रांति सफलीभूत होने के बाद, चीन में अधिनायकत्व (dictatorship) की प्रकृति पहली अवस्था में क्या थी? मैं समझता हूं कि क्रांति के बाद वर्ग-विन्यास (class-alignment), चीन में स्थापित राज्य के अधिनायकत्व का स्वरूप, क्लासिकल मार्क्सवादी साहित्य में कहा जाने वाला सर्वहारा वर्ग व किसानों का जनवादी एकनायकत्व (D.D.P.P. अर्थात Democratic Dictatorship of the Proletariat and Peasantry) का था। माओ त्से-तुंग ने अपनी ही भाषा में इसे जनता की जनवादी अधिनायकत्व की संज्ञा दी है। इस एकनायकत्व का रूप क्या था? मजदूर वर्ग के नेतृत्व में उसके अधिनायकत्व के अंतर्गत यह समूचे किसान समुदाय के साथ एक विशेष किस्म का वर्ग-गठबंधन (class alliance) था। वहां की स्थिति रूस में क्रांति के बाद संविधान सभा पर प्रतिबंध लगाने और सर्वहारा वर्ग एकनायकत्व को लागू करने से पहले की स्थिति के कुछ-कुछ समान थी। अब, क्योंकि चीनी क्रांति में शहरी पेटी-बुर्जुआ की एक विशेष भूमिका थी और प्रशासन में उसी तबके के लोग शामिल थे, इसीलिए, इसे मजदूरों व किसानों के बीच विशेष किस्म का गठबंधन कहने की बजाय एक विशेष उद्देश्य के मद्देनजर माओ ने इसे जनता की जनवादी अधिनायकत्व की संज्ञा दी और मैं इस तरह से कहने का समर्थन करता हूं।

उस अवधि में अधिनायकत्व के चरित्र के बारे में दसवीं कांग्रेस रिपोर्ट में जो कुछ उन्होंने कहा है, मैं उस अंश को पढ़ कर सुनाने की अनुमति चाहता हूं: ''पूंजीपति वर्ग तथा अन्य सभी शोषक वर्गों का तख्ता पूरी तरह उलट देने—पूंजीपति वर्ग अधिनायकत्व की जगह सर्वहारा वर्ग अधिनायकत्व की स्थापना के लक्ष्य को लेकर, बहरहाल, ज्यों-ज्यों चीनी क्रांति और ज्यादा आगे बढ़ती गयी, और खासकर जब वह समाजवादी क्रांति में तब्दील हो गयी और कदम-ब-कदम गहन होती चली गयी...आदि, आदि।'' गौर कीजिए एक कैसी अजीब असंगति। चीन में सफलीभूत नयी

जनवादी क्रांति के बाद के स्तर को ही बुर्जुआ अधिनायकत्व की अवस्था कैसे कहा जा सकता है? लेकिन उन्होंने यही कहा है। क्या सीपीसी इसे वस्तुतः बुर्जुआ अधिनायकत्व का स्तर ही मानती है या सिर्फ एक त्रुटिपूर्ण सैद्धांतिक अभिव्यक्ति है? इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता है कि सीपीसी इसे बुर्जुआ अधिनायकत्व का स्तर नहीं बल्कि जनता की जनवादी अधिनायकत्व की अवस्था मानती है। तब कैसे एक ऐसी त्रुटिपूर्ण सैद्धांतिक अभिव्यक्ति हो सकी? इस संबंध में मुझे दो ही संभावनाएं लगती हैं।

पहली संभावना है कि दो लाइनों के बीच संघर्ष के बारे में बार-बार दुहाई देते एवं जाप करते समय शायद वे झोंक में आ गये और नतीजतन यह खामी आ गयी। अर्थात ज्यों ही चीनी क्रांति समाजवादी क्रांति के स्तर में पहुंची है, त्यों ही सर्वहारा वर्ग अधिनायकत्व स्थापित हो गया है और क्योंकि यह सर्वहारा वर्ग अधिनायकत्व है, इसीलिए बुर्जुआ अधिनायकत्व को परास्त करने के बाद ही यह अवश्य अस्तित्व में आना चाहिए!

दूसरी संभावना यह है: विचाराधीन उस अवधि में पार्टी की अग्रणी कमेटी में लिऊ शाओची एक संशोधनवादी हैं और यह सिद्धांत उनके मन में काम कर रहा था कि ज्यों ही संशोधनवादी लोग पार्टी का नेतृत्व हड़प लेते हैं, त्यों ही पार्टी व राज्य का वर्ग-चरित्र भी बदल जाता है, इसीलिए इसी चिंतन के प्रभाव के तहत उन्होंने उस अवधि को बुर्जुआ डिक्टेटरशिप की अवधि घोषित किया है। इस संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता। यदि बात ऐसी है तो शायद उन्होंने सोचा हो कि सर्वहारा का अधिनायकत्व सांस्कृतिक क्रांति के माध्यम से स्थापित किया गया था। यह बात रिपोर्ट में इस तरह स्पष्ट रूप में नहीं व्यक्त की गयी है। मैं सिर्फ संभावना की बात कह रहा हूं। मगर जो भी वजह हो, असली बात यह है कि अभिव्यक्ति गलत है और उसका समर्थन नहीं किया जा सकता।

दो-लाइन संघर्ष के बारे में चन्द बातें

अब, मैं दो लाइन संघर्ष के बारे में चन्द बातें कहूंगा जिस

तरीके से दो-लाइनों के बीच इस संघर्ष पर नौवीं कांग्रेस रिपोर्ट में विचार किया गया था, खासकर जिस तरीके से उन्होंने यह कहा था, मानो एक मजदूर वर्ग पार्टी के अंदर दो-लाइन संघर्ष हमेशा चलता रहेगा और पार्टी का अस्तित्व ही दो-लाइन संघर्ष पर आधारित है–मैंने उस समय चर्चा की थी कि ऐसा दृष्टिकोण क्यों गलत है और यह गलती कैसे हो सकी। फिर भी दसवीं कांग्रेस में इस मुद्दे पर उस तरह विचार नहीं किया गया है। इसलिए, हमें ऐसा प्रतीत होता है कि इसमें कुछ गलती सुधार हुआ है, हालांकि उन्होंने दो-लाइन संघर्ष के बारे में उस तरह स्पष्ट रूप में चर्चा नहीं की है, जिस तरह से हम इसे समझते हैं। अब उन्होंने कहा है कि बाहर जारी वर्ग-संघर्ष ही पार्टी के अंदर प्रतिफलित होता है और परिणामस्वरूप, वहां समय-समय पर दो-लाइनों के बीच संघर्ष होगा। उन्होंने यह नहीं कहा है कि पार्टी के अंदर ऐसा संघर्ष हर वक्त जारी रहेगा। उदाहरण के लिए, उन्होंने इस तरह कहा कि उनकी पार्टी के इतिहास में ऐसे दो-लाइन संघर्ष दसियों बार हो चुके हैं और वर्गहीन समाज में पहुंचने के पहले शायद ऐसे वर्ग-संघर्ष बीस से तीस बार और भी होंगे। अब कोई व्यक्ति सकारात्मक लहजे के प्रति आपत्ति कर सकता है, जिसमें यह जोर देकर कहा गया है कि वहां दो-लाइन संघर्ष होगा। इसका कारण है कि यह होगा या नहीं–यह कुछ कारकों पर निर्भर करता है।

बात ऐसी नहीं है कि पार्टी के अंदर दो-लाइन संघर्ष लोगों की इच्छा से स्वाधीन एक सत्ता (entity) है। इस मामले की मर्मवस्तु क्या है? पार्टी के अंदर दो मूलभूत सवालों पर विरोधी विचार पैदा होंगे या नहीं? इसे क्या चीज निर्धारित करती है? यदि पार्टी नेतृत्व योग्य एवं सक्षम है, यदि वह ज्ञान-विज्ञान (epistemology) की विभिन्न शाखाओं को समेटते हुए और संयोजित करते हुए मार्क्सवाद के विज्ञान की सही पक्की समझदारी हासिल करने में सक्षम होता है, और अगर वह सम्भाव्यता के तर्क-विज्ञान और मनोविज्ञान पर अच्छी दखल रखता है, तो वह तनिक संकेत पर भी समझ सकेगा कि पार्टी-कार्यकर्ता क्या कहना चाहते हैं, वह समस्या की प्रकृति व महत्व की समझ हासिल

कर सकता है और इसलिए वह अचानक गफलत में, संकट में नहीं पड़ता है। लेकिन जब पार्टी में काम की अफसरशाही शैली प्रचलित हो जाती है, तो नेता सिर्फ परिपत्र (circular) जारी करते हैं, भाषण देते हैं, क्लास लेते हैं, लेख लिखते हैं और पार्टी कार्यकर्ताओं को जन-लाइन (mass line) देने पर ध्यान देते हैं, मगर वे कॉमरेडों के साथ घनिष्ठ संबंध (साहचर्य) कायम नहीं रखते हैं और उनके साथ सामूहिक जीवन नहीं बिताते हैं तब इस खतरे की संभावना बनी रहती है। और, सामूहिक जीवन बिताने का अर्थ सिर्फ कैम्पों में एक साथ रहना, एक साथ सभी का गांवों में पड़े रहना या किसानों के परिवारों में निवास करना ही नहीं होता। इसके अतिरिक्त, कोई व्यक्ति शायद यह भी सोचे कि यद्यपि वह एक अलग घर में अपने बीबी व बच्चों के साथ रहता है, मगर वे भी तो पार्टी कॉमरेड हैं और वह उन्हीं के साथ रहता है, तो इसे निश्चित रूप से समझा जा सकता है कि वह दिन-रात पार्टी कॉमरेडों के साथ संगति एवं साहचर्य में रह रहा है। यह भी एक गलत अवधारणा है।

यह जरूरी है कि नेताओं द्वारा पार्टी कॉमरेडों को, निरंतर सभी की संगति-साहचर्य में, निरंतर सामूहिक चर्चा-बहस और निरंतर सामूहिक क्रियाकलापों में शामिल किया जाना चाहिए ताकि कॉमरेड अपनी हरेक समस्या का सूक्ष्मता के साथ विस्तार में उत्तर प्राप्त कर सकें और कम्युनिस्ट नीति-नैतिकता और संस्कृति अर्जित करने का संघर्ष मजबूत हो जाये। अतः हमारे लिए कार्य की अपनी शैली, चर्चा व आलोचना के अपने तौर-तरीके (norms) अपने दृष्टिकोण व तर्क-युक्ति की पद्धति को, संक्षेप में हरेक चीज को लगातार बेहतर बनाना जरूरी है। हमारे लिए अपने कार्य की शैली लगातार सुधारते जाना इसलिए जरूरी है ताकि कैडर-शक्ति व संख्या बढ़े, पार्टी इकाई की संख्या बढ़े, और निरंतर बढ़ते हुए संगठन की जटिल समस्याओं को हल करने की क्षमता भी बढ़े। यद्यपि आज यह पर्याप्त है, मगर इसे और भी ज्यादा उन्नत करना होगा। देखिए, कि इसी वजह से उन्होंने दसवीं कांग्रेस में संघर्ष-आलोचना और रूपान्तरण का आह्वान किया है। इसका अर्थ

यह है कि आलोचना व आत्म-आलोचना के माध्यम से अपने-आप को लगातार रूपान्तरित करते जायें ताकि आप सदा बदलती हुई परिस्थितियों और हर समय पैदा होने वाली पेचीदा समस्याओं से निपट सकें। और इसके साथ मार्क्सवाद के विज्ञान के व्यापक ज्ञान को अर्जित करने के लिए संघर्ष को संयोजित करना जरूरी है। एकमात्र तभी कार्य की अफसरशाही शैली से लड़ना और गलतियों व भूल-चूकों से अपने आप को मुक्त करना हमारे लिए संभव हो सकता है। ऐसी भी बात नहीं है कि हमसे और आगे गलती नहीं होगी या हो सकेगी ही, मगर इसकी संभावना काफी सीमित अवश्य होगी।

विभिन्न समस्याओं का पूर्व अनुमान करने और उनकी पकड़ हासिल करने एवं समझने की नेतृत्व की क्षमता व दूरदर्शिता ही इसे निर्धारित करती है कि दो-लाइन संघर्ष को कहां तक सीमित एवं नियंत्रित किया जा सकता है। अतः इस दो-लाइन संघर्ष की आवृत्ति की संख्या काफी हद तक इस पर निर्भर है कि अन्दरूनी पार्टी-संघर्ष, अन्दरूनी पार्टी-शिक्षा का दायित्व कहां तक सही तरीके से संचालित किया जा सकता है और इसके आधार पर चिंतन की एकरूपता और वैचारिक केन्द्रीयता को कहां तक विकसित किया जा सकता है। इसलिए यह सोचना गलत है कि यह दो-लाइन संघर्ष लोगों की इच्छा से परे एवं स्वाधीन है। चिंतन की बुर्जुआ व सर्वहारा लाइनों के बीच संघर्ष तो सिर्फ तभी पैदा होता है, जब पार्टी के अंदर द्वन्द्व एक झगड़े एवं शत्रुतापूर्ण विरोध का रूप ग्रहण कर लेता है। और, जितने अरसे तक यह विरोध की अवस्था में नहीं पहुंचता है, गलतियों एवं खामियों के साथ, यह सर्वहारा लाइन की परिधि या दायरे के अंदर ही रहता है।

हमें विश्वास है कि माओ नेतृत्व चीनी क्रांति की रक्षा करेगा

मैं एक अन्य बात पर चर्चा के बाद इसका समापन करूंगा। दसवीं कांग्रेस रिपोर्ट ने नौवीं कांग्रेस रिपोर्ट की बहुत सी कमियों, सैद्धांतिक भ्रान्तियों व स्व-विरोधों को दूर करने में मदद की है और बहुत से शिक्षाप्रद पहलुओं को प्रमुखता के साथ पेश किया है

तथा जोर देकर दोहराया है। इस दृष्टिकोण से, यह रिपोर्ट अत्यधिक प्रशंसनीय एवं अभिनन्दनीय है। मगर आप जानते हैं कि चीनी सांस्कृतिक क्रांति के बारे में चर्चा करते समय पूर्ण रूप से इसकी शानदार के रूप में प्रशंसा करते हुए भी, मैंने इसकी कुछ गंभीर गलतियों का उल्लेख किया था। मैंने टिप्पणी की थी कि जब तक उन्हें तुरन्त दूर नहीं किया जाता, तब तक चीन में संशोधनवाद का खतरा पुनः अपना मनहूस सिर उठाता रहेगा। दसवीं कांग्रेस रिपोर्ट का अध्ययन करते हुए, मुझे यह एहसास हुआ है कि वे अभी तक भी उन गलतियों की पकड़ हासिल करने में सक्षम नहीं हुए हैं। या कम से कम यह बात मेरी नजर में नहीं आयी है। सांस्कृतिक क्रांति पर चर्चा के दौरान मैंने कहा था कि जिस समय वे पार्टी के अंदर व सामाजिक जीवन में विभिन्न सूक्ष्म रूपों में जड़ जमाए बुर्जुआ एवं पुरानी प्रतिक्रियावादी संस्कृति के प्रभाव के खिलाफ सांस्कृतिक क्रांति संचालित कर रहे थे, फिर भी वे सर्वहारा संस्कृति के चरित्र, स्वरूप एवं विशिष्ट लक्षण के बारे में तथा ये विशेषताएं बुर्जुआ मानवतावादी संस्कृति एवं मूल्यबोधों से मूलभूत रूप में किस तरह भिन्न हैं–इन सबके बारे में कोई वैज्ञानिक अवधारणा प्रस्तुत करने में अभी तक सक्षम नहीं हुए हैं। फलस्वरूप चाहे वे इस सांस्कृतिक क्रांति के माध्यम से फौरी तौर पर अपनी समस्याएं हल कर लें, मगर सामाजिक जीवन में व्यक्तिवाद जड़ें जमाये कायम रहेगा और इससे बहुत सी समस्याएँ पैदा होंगी। इसका कारण यह है कि इस युग में, उन्नत पूंजीवादी देशों तक में भी, एक समय इन्सान को संघर्ष करने के लिए प्रेरित करने वाली व्यक्तिगत स्वतंत्रता, व्यक्तिगत अधिकार और स्वतंत्र अस्तित्व-बोध अब सुविधा-बोध में तब्दील होते जा रहे हैं, यद्यपि शोषण व उत्पीड़न के खिलाफ संयुक्त संग्राम की वहां अभी भी जरूरत है। एक समय का, बुर्जुआ जनवादी क्रांति का समानता के अधिकार का नारा पूंजीवादी देशों में वस्तुतः सिर्फ एक नारा बन कर रह गया है। समाजवादी व्यवस्था में समानता का अधिकार सही मायने में स्थापित हो जाने के बाद व्यक्ति की मुक्ति के लिए संघर्ष एक नये स्तर में प्रवेश कर गया है। बुर्जुआ सामाजिक व्यवस्था की तुलना में

व्यक्ति द्वारा अधिकाधिक अवसर, लाभ व स्वतंत्रता का उपभोग करने के माध्यम से चीजों की स्वाभाविक प्रक्रिया में एक सर्वथा नयी परिस्थिति पैदा होगी। जब तक इसे वैज्ञानिक ढंग से भली-भांति नहीं समझा जाता, तब तक व्यक्तिगत स्वतंत्रता और व्यक्तिगत अधिकार-बोध कम्युनिस्टों में भी नये किस्म के सुविधा-बोध की सृष्टि करेंगे।

समाजवादी क्रांति के बाद, इस व्यक्तिवाद के प्रभाव के अंतर्गत मजदूरों के अंदर एक नयी किस्म का आर्थिक अवसरवाद पैदा होगा, यदि उनकी चेतना निम्न स्तर पर कायम रही। इसके अतिरिक्त, नव-संशोधनवाद के प्रभाव के तहत, और समाजवादी व्यवस्था एवं समाजवादी अर्थव्यवस्था के विकास के बुनियादी नियम के बीच अंतर्निहित द्वन्द्व के असली चरित्र की प्राथमिक (rudimentary) समझदारी की भी कमी के कारण सिद्धांतकारों का एक ग्रुप मानता है कि समाजवादी व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य किसी भी तरह उत्पादन को बढ़ाना है; क्योंकि उनके अनुसार मजदूरों के लिए समाजवाद कोई मायने नहीं रखता है, जब तक उन्हें उन्नत पूंजीवादी देशों में उपलब्ध भौतिक लाभों की तुलना में अधिक लाभ हासिल न हों। अत: समाजवादी अर्थव्यवस्था के विकास के नियमों की पूर्णतया अनदेखी करके किसी भी तरह उत्पादन बढ़ाने की अपनी धुन में, वे पूंजीवादी भौतिक प्रोत्साहन (material incentive) तक की भी वकालत करते हैं और इसे प्रदान भी करते हैं, जिसके परिणामस्वरूप उत्पादन प्रणाली में विभिन्न स्तरों पर पूंजीवादी प्रवृत्तियां प्रकट होनी शुरू हो जाती हैं, अराजकता व सट्टेबाजी की प्रवृत्तियां पैदा होने लगती हैं, और अंतत: समाजवादी अर्थव्यवस्था एवं प्रणाली का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाता है। अत: भौतिक लाभ एवं प्रोत्साहन के प्रति मजदूरों के अंदर तीव्र अभिलाषा पैदा होगी और व्यक्तिगत अवसरवाद प्रकट होगा और बढ़ता रहेगा। यह एक नयी किस्म का व्यक्तिवाद है, और मैंने इसे समाजवादी व्यक्तिवाद की संज्ञा दी थी।

मैंने यह भी दिखाया था कि समाजवादी व्यवस्था में, व्यक्तिगत स्वार्थ व सामाजिक स्वार्थ के बीच इस द्वन्द्व का चरित्र विरोधात्मक

है। जब तक इस द्वन्द्व को मिलनात्मक द्वन्द्व में परिणत नहीं किया जाता, तब तक राजसत्ता का विलोप (wither away) नहीं होगा, हालांकि उत्पादन व वितरण से संबंधित आर्थिक श्रेणी (category) के रूप में वर्गों का खात्मा हो सकता है। अर्थात व्यक्तिगत स्वार्थ और सामाजिक स्वार्थ के बीच विरोधात्मक द्वन्द्व की अभिव्यक्ति के रूप में अपने दमन (coercion) के साथ राजसत्ता का अस्तित्व बना रहेगा। इसीलिए व्यक्ति की मुक्ति नहीं होगी। इस स्थिति में, व्यक्तिगत अधिकारों को स्थापित करने के लिए मांगें नये सिरे से उठाई जायेंगी; विद्रोह करने के लिए व्यक्ति की प्रवृत्ति बढ़ेगी और सामाजिक लक्ष्य एवं उद्देश्य तथा कम्युनिस्ट विचारधारा की शक्ति व उसके प्रति समर्पण-भावना कमजोर हो जायेगी। अतः या तो राजसत्ता का दमन बढ़ेगा जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति का विक्षोभ और ज्यादा बढ़ेगा या नहीं तो उदारीकरण का सिलसिला शुरू हो जायेगा और उसके परिणामस्वरूप, संशोधनवाद व पूंजीवाद की पुनर्स्थापना का खतरा पैदा हो जायेगा।

इसलिए, समाजवादी क्रांति की निर्बाध अग्रगति के लिए संघर्ष के साथ-साथ सामाजिक स्वार्थ के साथ व्यक्तिगत स्वार्थ के विरोधात्मक द्वन्द्व को मिलनात्मक द्वन्द्व में रूपान्तरित करने के लिए, संस्कृति के क्षेत्र में सामाजिक स्वार्थ के साथ व्यक्तिगत स्वार्थ के एकात्मीकरण हेतु अविराम संघर्ष छेड़ना अनिवार्य है। मजदूर वर्ग को यह समझना जरूरी है कि समाजवादी व्यवस्था में अधिकारों व स्वतंत्रता को हासिल करने के लिए सत्तारूढ़ वर्ग के खिलाफ अब संघर्ष की और कोई जरूरत नहीं है। बल्कि उल्टे, अभी भी विभिन्न सूक्ष्म रूपों में जड़ जमाए व्यक्तिगत स्वतंत्रता व व्यक्तित्व-बोध के बारे में पुरानी बुर्जुआ अवधारणा और संस्कार-आदत सामाजिक जरूरत के साथ व्यक्तिगत जरूरत के एकात्मीकरण की प्रक्रिया में रुकावट डाल रही है। आज व्यक्ति की मुक्ति के मार्ग में यही रुकावट बन कर खड़े हुए हैं।

मैं सोचता हूं कि इसे सम्पन्न करने के लिए यह अवधारणा कि असली कम्युनिस्ट वह है जो समाज, पार्टी और क्रांति के स्वार्थ के प्रति अपने व्यक्तिगत स्वार्थ को समर्पित करेगा–अब पर्याप्त

नहीं है। कालिनिन द्वारा लिखित पुस्तक 'कम्युनिस्ट शिक्षा के बारे में' और लिऊ शाओ ची द्वारा लिखित पुस्तक 'एक अच्छा कम्युनिस्ट कैसे बनें' में दर्ज यह अवधारणा, हालांकि अब उसकी आलोचना की जाती है, एक समय था जब सीपीसी इस पुस्तक का अत्यधिक अभिनन्दन किया करती थी–बुनियादी रूप में बुर्जुआ मानवतावादी मूल्य-बोधों को ही प्रतिबिम्बित करती है। यदि चेतना का मान (स्टैण्डर्ड) इसी स्तर पर रुका रहे, तो व्यक्ति की मुक्ति का संघर्ष, जो समाजवादी व्यवस्था में एक नए जटिल स्तर में प्रवेश कर चुका है, पूरी तरह समाधान नहीं हो सकता और व्यक्तिवाद की प्रवृत्ति को परास्त करके सम्पूर्ण समर्पण की भावना को पैदा करना संभव नहीं होगा। आज कम्युनिस्ट चरित्र के उन्नत मान (standard) को अर्जित करने हेतु एक व्यक्ति के लिए नि:संकोच, बेहिचक, बिना शर्त एवं आनन्द के साथ पार्टी व क्रांति के स्वार्थ के साथ अपने स्वार्थ का एकात्मीकरण करना और उस आधार पर दुरूह व कष्टसाध्य संघर्ष चलाना अनिवार्य है। चीनी सांस्कृतिक क्रांति पर चर्चा करते समय मैंने इस विषय पर भी चर्चा की थी।

दूसरे, मार्क्सवाद-लेनिनवाद की समझदारी, जो क्रांति को निर्देशित (guide) करती है और एक खास अवस्था तक उसकी अग्रगति में मदद करती है, क्रांति के बाद की अवधि में जब वर्ग संघर्ष सम्पूर्ण रूप से भिन्न एक स्तर में प्रवेश कर जाता है, तब जो नयी-नयी समस्याएं व नयी जटिलताएं पैदा होती हैं, उनकी संगति में तथा प्राकृतिक विज्ञानों में और आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक क्षेत्रों में अग्रगतियों के साथ संगति में जब तक मार्क्सवाद-लेनिनवाद को दार्शनिक विकास के माध्यम से और ज्यादा विकसित नहीं किया जा सकेगा, तो चेतना का पुराना स्टैण्डर्ड बदले हुए संदर्भ में अपर्याप्त हो जायेगा। और अगर दार्शनिक व सांस्कृतिक स्तर निम्न बना रहे तो उपयुक्त माहौल पाने से एक जटिल स्थिति में जिस किसी भी घड़ी में संशोधनवाद पैदा हो सकता है और क्रांति को खतरे में डाल सकता है।

तीसरे, जब तक व्यक्तिगत चेतना सामाजिक चेतना के स्तर तक उन्नत नहीं होती, तब तक सामाजिक क्रांति के नेता के रूप

में व्यक्ति की भूमिका बनी रहेगी। इसके बगैर, क्रांति को संगठित करने की कल्पना तक भी नहीं की जा सकती। जो कोई भी पार्टी इसके महत्व को नहीं समझती है, एक नेता के माध्यम से पार्टी के सामूहिक नेतृत्व को व्यक्तिकृत (personify) करने में विफल होती है, और उस नेता को जन-मानस में स्थापित करने के लिए प्रचारित नहीं करती तो वह क्रांति का ठोस रूप में तनिक भी विचार नहीं करती है। जब कभी किसी देश-विशेष में क्रांतिकारी क्रियाकलाप को ठोस रूप में संगठित करना जरूरी हुआ है, तो क्रांति के लिए एक वास्तविक जरूरत के रूप में इस दायित्व को पूरा करना अनिवार्य हुआ है। यह बात समझना जरूरी है कि बुर्जुआ जनवादी क्रांति में और सर्वहारा क्रांति में भी एक नेता के रूप में व्यक्ति द्वारा ऐतिहासिक भूमिका निभानी पड़ी; मगर चरित्र में दोनों के बीच एक मूलभूत फर्क है। जब तक इस बात की पक्की समझदारी हासिल न की जाए, तो सर्वहारा क्रांति में भी एक विशेष व्यक्तिगत नेतृत्व के प्रति एक यांत्रिक दृष्टिकोण पैदा हो जायेगा, और इससे व्यक्ति-पूजा व उसके तमाम बुरे प्रभाव—या तो नेतृत्व के प्रति अन्ध निष्ठा या उसके प्रति अंध विरोध पैदा हो जायेंगे। इसलिए उस विशेष नेता के प्रति द्वन्द्वात्मक संबंध की बजाए, एक यांत्रिक संबंध पैदा हो जायेगा, पार्टी में चेतना का समग्र स्टैण्डर्ड नीचे गिर जायेगा और अंततः उस द्वारा नेता भी बुरी तरह प्रभावित हो जायेगा। हालांकि चीनी क्रांति के नेता के रूप में माओ त्से-तुंग का आविर्भाव एक ऐतिहासिक घटना है, जिसके बगैर, खुद क्रांति को सम्पन्न नहीं किया जा सकता था और देश एवं लोगों के सामने माओ को नेता के रूप में प्रचारित करना, उनका अच्छी तरह हित साधता है, मगर बुर्जुआ क्रांति में व्यक्तिगत नेतृत्व और सर्वहारा क्रांति में सामूहिक नेतृत्व की इस ठोस व्यक्तिकृत अभिव्यक्ति के बीच फर्क के बारे में ठीक-ठीक निर्देशित करते हुए तथा ऐतिहासिक विकास के दौरान किस प्रक्रिया में क्रांति की अनिवार्य जरूरत के रूप में इस विशेष नेतृत्व का आविर्भाव हुआ है—इसे दिखाने के लिए अभी तक विज्ञान सम्मत कोई सुस्पष्ट धारणा पेश करने में वे नाकाम रहे हैं।

वे यह दिखाने में इसी वजह से नाकाम रहे हैं, क्योंकि बुर्जुआ क्रांति तो उत्पादन के साधनों पर व्यक्तिगत मालिकाना व अधिकार स्थापित करने के लिए होती है, यह क्रांति एक मायने में व्यक्ति व व्यक्तिवाद के विकास के लिए एवं उसके फलने-फूलने के लिए होती है। एक तरह से मॉडल बुर्जुआ जनतंत्र के दायरे के अंदर भी व्यक्तिगत नेतृत्व ही बाहर से समष्टि (समूह) को संचालित करता है अर्थात अमली तौर पर, वहां जनतांत्रिक नेतृत्व औपचारिक ही रहता है। मगर समाजवादी क्रांति क्योंकि उत्पादन के साधनों पर व्यक्तिगत मालिकाना के बदले सामूहिक मालिकाना स्थापित करने के लिए होती है, इसलिए उसने नेतृत्व की जो अवधारणा विकसित की है, वह सामूहिक नेतृत्व की अवधारणा ही है। एक सर्वहारा वर्ग की पार्टी में, यह सामूहिक नेतृत्व उसके तमाम सदस्यों के विचारों की द्वन्द्वात्मक अंत:क्रिया के माध्यम से ही विकसित होता है और पार्टी में सामूहिक नेतृत्व का आविर्भाव सही मायने में सिर्फ तभी होता है जब वह एक नेता के माध्यम से व्यक्तिकृत (personified) होता है। जहां तक मुझे जानकारी है, सीपीसी ने अभी तक सामूहिक नेतृत्व के बारे में ऐसी अवधारणा प्रस्तुत नहीं की है। फलस्वरूप, नेतृत्व के बारे में उनकी अवधारणा में विभिन्न भ्रान्तियां व यांत्रिक दृष्टिकोण जड़ जमाये रहेंगे। इनके अलावा, मैंने उनकी कुछ अन्य खामियों का भी उल्लेख किया था। मैं उस सबके बारे में फिर से चर्चा नहीं करना चाहता हूं। चीनी सांस्कृतिक क्रांति का 'शानदार' के रूप में अभिनन्दन करते हुए भी मैंने ऐसी खामियों का उल्लेख किया था और कहा था कि अगर वे बरकरार रहीं तो सांस्कृतिक क्रांति के सामने मौजूद फौरी समस्याएं तो शायद हल हो जायें मगर भावी और ज्यादा संकटों का खतरा बना रहेगा। यदि वे समाजवादी व्यक्तिवाद के चरित्र और उन कारणों को भली-भांति न समझ सके कि क्यों क्रांति के बाद नयी स्थिति में व्यक्तिवाद की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है, और वे इन से लड़ने में सक्षम सर्वहारा नीति-नैतिकता की एक नूतन उन्नत अवधारणा विकसित नहीं कर सके, और अगर नेतृत्व की उनकी अवधारणा यांत्रिक ही बनी रही, तो ज्यों ही सांस्कृतिक क्रांति की लहर कुछ-कुछ कम होगी तथा एक स्थायी परिस्थिति पैदा होगी, त्योंही फिर समस्याएं

आ खड़ी होंगी। विशेष रूप से भावी नयी पीढ़ी इस समाजवादी व्यक्तिवाद का शिकार हो जायेगी और फलस्वरूप एक नये किस्म के संशोधनवाद का खतरा पैदा हो जायेगा।

यह बड़ी खुशी और आशा की बात है कि वे दसवीं कांग्रेस में नौवीं कांग्रेस की बहुत-सी प्रमुख खामियों व गलतियों को दूर करने में समर्थ हुए* हैं और मैं माओ त्से-तुंग की योग्यता और उनकी बुद्धिमता की कद्र करता हूं, जिस के बल पर वे इसे संभव कर सके हैं। अत: मैं युक्तिसंगत रूप से आशा करता हूं कि माओ त्से-तुंग के नेतृत्व में सीपीसी इन कमजोरियों को भी शीघ्र दूर करने और संशोधनवादी भटकाव से चीनी क्रांति को बचाने में समर्थ होगी। हमारी पार्टी को यह आशा और विश्वास है।

संभव है कि इस चर्चा में सभी विषयों को न समेटा गया हो। एक ही भाषण में यह करना संभव भी नहीं है, मगर मैं समझता हूं कि मैंने सभी महत्वपूर्ण विषयों पर चर्चा की है। मैं यहीं पर आज अपनी बात समाप्त करता हूं।

क्रांति जिन्दाबाद!

6 नवम्बर, 1973 का यह भाषण, सीपीसी की नौवीं कांग्रेस के विश्लेषण के साथ बांग्ला में एक पुस्तिका के रूप में 5 अगस्त, 1981 को प्रकाशित किया गया था।

---

* माओ त्से-तुंग के देहांत के बाद, दिवंगत नेता कॉ. शिवदास घोष के चिंतन द्वारा निर्देशित हमारी पार्टी की केन्द्रीय कमेटी ने यह दिखाने के लिए विश्लेषण किया कि चीन में देंग शियाओ पिंग के नेतृत्व में संशोधनवादियों ने पार्टी और राज्य की सत्ता हड़प ली है।